





ॐ

ईशावास्यम्

वाजसनेयीसंहितोपनिषद्

की

भाषा टीका

सरल मध्यदेशी भाषा में

कोलाख्य नगर निवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण ने पंडित पौराणिक महा-राज वैकुण्ठनाथजी की सहायता से अनुवाद किया

वाजपेयि पण्डित रामरत्न के प्रबन्ध से

दूसरीबार

लखनऊ

मुन्शी नवलकिशोर (सी,आई,ई) के छापेख़ाने में छपी

मई सन् १८९१ ई०॥

ॐ

एकमेवाद्वितीयम् ॥

नमोयाज्ञवल्क्याय ब्रह्मविद्या प्रदर्शकाय ॥

विज्ञापन ॥

सर्व सुज्ञ सज्जन विवेकविचार शील पाठकजनों को विदित हो कि इस कलिकाल महाराज के राजशासन में विशेष करके इस भारतवर्षकी प्रजा प्रायः प्रज्ञाहीन होतिहै इसही कारण से उनको वेदशास्त्रोंका अध्ययन अरु तिनका अर्थज्ञान यथार्थ होता नहीं अरु तिसके न होनेसे धर्म अधर्म स्वार्थ परमार्थ लोक परलोक शुभ अशुभ कर्त्तव्य अकर्त्तव्य आदिकोंका विवेक किंचित्मात्र भी होता नहीं तिसके न होनेसे अज्ञान बशभये विषय वासना कर ताड़ित चित्त शिश्नोदर परायण पशुवत् पंच विषयात्मक जगदारण्यके सम्मुखही धावते हैं अरु जन्म जन्मान्तररूपी गर्त्तमें जो कि काम क्रोध लोभ मोह राग द्वेषरोग ताप योग वियोग हानि लाभ जन्म मरणादि अनेक अनर्थरूप आवरणसे वेष्टित हैं पत्तन भावको पाय अनिवार्य दुःखोंको प्राप्त होतेहैं। तथाच। "गर्त्तमिवपतति"। बृ०उ० अ० ६ केतृतीयज्योतिर्ब्राह्मण बिषे ऐसी सहस्त्रावधि प्रजा में कोई एक बेदशास्त्र करके प्रतिपाद्य जे अपराविद्या आश्रित अतिगहन कर्ममार्ग। "गहना कर्मणोगतिः"। तिसबिषे प्रायः सकामतासे प्रवृत्तहोते हैं परन्तु तिसके कर्त्तव्यविधि फल तात्पर्यको जानतेनहीं केवल वासनाके बशभये अपने मनकी युक्ति अनुसार आचरण करतेहैं। अथवा नाना प्रकारके मतवादी जे वेदबाह्य मतके चलानेवाले हुयेहैं तिनके मतमदसे तिलकादि बाह्य मुद्राको ही पुरुषार्थ

मानके मदोन्मत्त फिरते हैं। इस प्रकार के सहस्रावधि मनुष्योंमें कोई एक बिरला विषयों से वैराग्यवान् परमसावधान आत्मजिज्ञासु होताहै परन्तु पूर्वसंस्कारकी किंचित् मलिनतासे प्रज्ञा की मन्दताकरके वेदशास्त्रों का यथार्थ अध्ययन विचार अभ्यास बनता नहीं अरु सतयुगादिवत् ब्रह्मचर्य्यादि साधनपूर्वक वेदाध्ययन इस कलिराज महाराज के राजशासन में प्रायः बनेनहीं क्योंकि इसकाल में मनुष्योंके आयुः बल वीर्य प्रज्ञाआदि अति अल्पहोतेहैं अरु बाल्यावस्थासेही अन्न वस्त्रादिकों के अर्थ चिन्ता युक्त व्यावृत्तचित्तहोताहै एतदर्थ मन्दअधिकारी जो संस्कृतविद्या के संस्काररहित वैराग्य शील शान्तात्मा आत्मजिज्ञासुहैं तिनके विचारार्थ तादृशही शास्त्रविद्यारहित अतिअल्पज्ञ कोलाख्यनगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर नागरब्राह्मणने केवल अपने परमदयालु महात्मा ब्रह्मवेत्ता श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वतीजी गुरुमहाराज के पादपद्मरज की कृपासे अरु शास्त्रज्ञपंडितों की सहायतासे ईशादि उपनिषदोंकी भाषाटीकाकरनेका संकल्पकर ईश केन कठ इन तीन उपनिषदोंकी टीका किंचित् श्रीशंकराचार्य के भाष्यार्थानुसार किया परन्तु स्वसमीपमें द्रव्याभावके कारण उनकामुद्रितहोय लोकोपकारमें प्रकाशितहोना दुःसाध्य जान अन्य उपनिषदोंकी टीकाकरनेसे चित्त उपरामभया परंतु सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमात्माने इस मेरे शिवसंकल्पकी सिद्धता के अर्थ जिलअ् अलीगढ़के अतरौलीग्रामनिवासी विवेकी आत्मनिष्ठ लालाश्यामलालजी कायस्थके अन्तःकरणमें श्रद्धा उत्पन्न कर उनकेपत्रद्वारा महान् उत्तमकारी पुस्तकको श्रीमती धर्मात्मा ठकुरानी महताबकुवँरि रईस कोटिला परगनह फीरोजाबाद जिलअ् आगरा के नेत्रगोचरकराया तब उस धर्मात्मा देवी ने अपने कार्य्याध्यक्ष कुवँर एदलसिंहजी की सम्मति से ईश अरु केन इन दो उपनिषदों की इस टीका को मुद्रित कराय प्रकाशितकिया। अब इसही टीकाको बहुत शुद्धकराय श्रीमान

परमधार्मिक मुंशीनवलकिशोरजी साहब ने अपने लक्ष्मणपुर के महायन्त्रालय में मुद्रितकराय सर्वलोकोपकारार्थ प्रकाशित किया सो–

[अस्तु]

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

महाभारत
„प्रमाणं विंदते यस्तु सर्वभूत गु
हाशयम्" श्लोकेन यदि कोऽपि न
दृश्यते तस्ये प्रे[illegible]नम्" परमात्मे
ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृत कृत्यस्य यो
गिनः" नैवास्ति किंचित् कर्तव्य मस्ति
चेन्न स तत्त्ववित्॥ „परब्रह्मास्त्या
[illegible] स तत्त्ववित्॥ [illegible] नारी
[illegible]बा मृत॥ विरह पर व्यास[illegible]
[illegible]पि [illegible] कर्मरि॥ तदेवास्वाद यत्[illegible]
[illegible] संगर सायनम्॥ रावे तत्त्वपर शुद्ध
[illegible] विश्रांति मा[illegible]॥ तदेवास्वाद य
[illegible] [illegible]॥ महाभारत = निरा
यं तर्व[illegible] [illegible]नमस्कार मस्तु[illegible]
[illegible] मनारंभ [illegible]
[illegible] तदेवा [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible]॥ [illegible] विचारणां॥ [illegible]
भावनया [illegible] [illegible]
[illegible] वासना [illegible]
[illegible]॥

ईशावास्योपनिषद् ॥

भाषानुवाद सहित

ॐ ईशावास्यमिदꣳसर्वंयत्किञ्च जगत्यांजगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥

पदान्वयः ॥

यत् किंच जगत्यां जगत् इदं सर्वं ईशा वास्यं तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा कस्य स्वित् धनं मा गृधः १ ॥

पदार्थ ॥

जो कुछ जगत्‌बिषे जगत् यह सर्व ईश्वरकरके आच्छादित है । तिस्से त्यागकरके रक्षाकरो किसीके भी धनकी मत आकांक्षा करो १ ॥

भावार्थ ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हेसौम्य । जो १ । कुछ २ । जगत्‌बिषे ३ जगत् भावहै ४ । अर्थात् पृथिवीआदि लोकलोकान्तर जो जगत्‌है तिस बिषे जोकुछ नामरूपात्मक जगत् भावहै । यह ५ । अर्थात् यावत् इन्द्रिय मन बुद्ध्यादि करके स्थूल सूक्ष्म अनुभवमें आवता है तावत् । सर्व ६ । परमेश्वर परमात्माकरके ७ । आच्छादित है ८ । अर्थात् जो चराचरका आत्मा सर्वान्तर होतसन्ते सर्व सम्बन्धरहित आकाशवत् सदाशुद्ध एकरस ज्ञानस्वरूप है सोई परमेश्वर परमात्मा है तिसकरके सर्व चराचर जगत् आच्छादितहै अर्थात् अनुभव बिषे स्थित है जो अनुभव यह अपुन जो आत्माहै सोई परमात्माहै क्यों जो प्राणमनादि सर्वके अवान्तर सर्वका अनुभवी है तातेआत्माहै। "*आत्मासर्वान्तर"। अरु सोई आत्मा प्राण मन बुद्धिआदि किसीका भी विषय नहीं ताते परमात्माहै । इसप्रकार परमात्मासे अभिन्न आत्मरूप जे अपुन

*बृ०उ०अ०३के अन्तर्यामी ब्रा० बिषे ।

सोई जगत्रूप हैं क्योंकि यावत् जगत्है तावत् सर्व अपने अनुभवबिषे स्थितहै अर्थयह जो अपना अनुभवही जगत्रूपहो भासताहै ताते जगत् अनुभवरूप है सो अनुभव आत्मासे इतर नहीं ‘ जैसे अग्निसे दाहकता भिन्ननहीं ’ अरु आत्मा परमात्मा से इतरनहीं क्योंकि परमात्माने अपनी इच्छासे सर्व जगत्रूप होय तिसबिषे आत्म (अन्तर्यामी) रूपसे आपही प्रवेशकिया है तथाच । “* तत् सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत् ” ।ताते वास्तवकरके परमात्मा आत्मा अरु जगत् अभेदरूपही हैं तथाच । “† सर्व्वं खल्विदम्ब्रह्म” । “ ‡ अयमात्माब्रह्म” । “ ! पुरुषएवेदंसर्व्वं ” । “×वासुदेवःसर्वमिति ” । इसप्रकार अनेक श्रुति स्मृति आदिकों के प्रमाणसे यह सर्व चराचर जगत् सत्य परमात्मज्ञान करके आच्छादितहै सो कैसाहै जगत् जो जगतत्वकरके असत्य अरु अधिष्ठानसत्ताकरके सत्यरूप है ‘ जैसे मृत्तिकाबिषे घट सो घटत्व करके वाचारंभणमात्र असत्य है ’ तैसेही सर्वाधिष्ठान आत्मा बिषे सम्पूर्ण नामरूपात्मक जगत् अविद्याकरके कल्पित ताते मिथ्याहै ऐसे कल्पित नामरूपात्मक जगत्बिषे जे सत्यप्रतीति भाव तिसको सत्य परमात्मज्ञानसे ९। त्यागकरके १०। अर्थात् असत्यरूप जगत् बिषे अज्ञानजन्य जे एषणा तिसकोत्याग के अपने आत्मा की रक्षाकरो ११ । अर्थात् सर्वके अभाव से जे एक निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मसत्ता अवशेष रहे हैं तिस अवस्था बिषे अनुकूलहो । अरु किसी के १२ । भी १३ । धनकी १४ । मत १५ । आकांक्षा करो १६ ॥ अर्थात् यावत् नाम रूपात्मक जगत् है तावत् सर्व पंचविषयात्मक होने से इन्द्रियों का भोग्यरूपीधन है तिनमें से किसीके भी धन की मत आकांक्षाकरो । अथवा यह मेरा यह मुझको प्राप्तहोय इस

---

*तै० उ० की आनन्दवल्लीबिषे । † छां०उ०अ० ४ बिषे । ‡ मां०उ०बिषे । ! पुरुष सूक्त मं× भ०गीता में ॥

बुद्धिको छांडदे क्यों जो यह जगत्‌रूपी धन किसका है किन्तु किसीकाभी नहीं एकके समीपसे दूसरे के समीप जानेवाला चंचल अरु नाशवान् है ताते यावत् पंचविषयात्मक जगत् है तिस सर्वको मिथ्या जानके तिसकी आकांक्षा छोड़ सत्य सर्वात्मभाव बिषे स्थित हो १ ॥

तात्पर्य ॥

" ईशावास्यमिदꣳ सर्व्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत् " इस प्रथम मंत्रके पूर्वार्ध से वेदभगवान्‌ने आत्मतत्त्वका उपदेशकिया। अरु " तेनत्यक्तेनभुञ्जीथाः " इस तृतीयपाद करके जिज्ञासु पुरुषको जो आत्मज्ञान की परिपक्वता इच्छितहै तो आत्मज्ञान के बिचार से संन्यासपूर्वक एषणात्रयका त्यागकरके अपने आत्माकी रक्षाकरे । अर्थात् एषणापूर्बक कर्महीं जीवोंको नानाप्रकारके जन्ममरणादि महान् क्लेशको प्राप्त करनेवाले हैं तिनसे अपने आपकी रक्षाबिषे कर्म एषणाके न्यासपूर्वक आत्मज्ञानही समर्थहै तथाच। " नान्यःपंथाविमुक्तये "। मोक्षार्थ अन्यमार्ग नहीं। ताते एषणा त्रय त्यागके आत्मज्ञानद्वारा अपनेआप की रक्षा करो। अरु " मागृधःकस्यस्विद्धनम् " इस चतुर्थपाद करके कर्म एषणा के न्यासकी परिपक्वताके अर्थ सूचना है जो किसीके भी धनकी मत आकांक्षाकरो । अर्थात् मोक्षके अर्थ कर्म एषणा का न्यास अर्थात् संन्यास कियाहै जिसने तिसको कालत्रयमें भी विषयादि पदार्थों की आकांक्षा कर्तव्य योग्य नहीं ॥

सम्बन्ध ॥

इस उपनिषद्‌का प्रथममंत्र ब्रह्मविद्या के अधिकारी मुमुक्षु प्रतिहै जो मोक्ष कामीको मोक्षार्थ संन्यासपूर्वक एक आत्मज्ञानही उपाय है सो प्रतिपादन करके अब जो कि संन्यासपूर्वक आत्मज्ञान के अभ्यास में असमर्थ हैं तिन मध्यम अधिकारी के अर्थ वेद भगवान् द्वितीय मंत्रको प्रतिपादन करते हैं ॥

कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे २॥

पदान्वयः ॥

इह कर्म्माणि कुर्वन् एव शतं समाः जिजीविषेत् एवं त्वयि नरे इतः अन्यथा न अस्ति कर्म न लिप्यते ॥

पदार्थ ॥

यहां [अग्निहोत्रादि विहित] कर्मोंको करते ही सौ वर्ष जीवनेकी इच्छाकरो । इसप्रकार तू जो पुरुष है तिसमें इससे प्रकारान्तर नहीं है [जो] कर्मसे न लिपायमानहो २ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य । यहां १ । अर्थात् आत्मज्ञानके अभ्यास की असमर्थता में कर्म्मों को २ । अर्थात् संध्या गायत्री अग्निहोत्रादि विहितकर्म जो कि वेदशास्त्रोंने धर्मरूपसे कर्त्तव्यकहे हैं अरु जिनके न करनेसे धर्महानिरूप प्रत्यवाय है तिन कर्मोंको करते ३ । ही ४ रहो । अरु सकामकर्म मतकरो क्यों जो कर्ममें फलकी इच्छा न करनेसे निष्काम कर्मद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धिहोने से ज्ञानद्वारा कर्ममोक्षसाधकहै ताते निष्काम विहितकर्म करतेही रहो । इसप्रकार निष्काम विहितकर्म करतसंते जो । सौ १००।५। वर्ष ६ । जीवनेकी इच्छाकरो ७। अर्थात् सौ वर्ष जो मनुष्यों के आयुकी परमावधि है तावत्पर्यन्त जो जीवने की इच्छा होयतो इच्छाकरो । अथवा जो सौ वर्ष परमावधि पर्यन्त जीवते रहो तो भी संसार बंधनकी निवृत्ति के अर्थ विहितकर्म निष्काम करतेहीरहो । अर्थात् यावत्पर्यन्त संसारसे दृढवैराग्य न होय तावत्पर्यन्त विहित कर्मका त्याग न करना । इसप्रकार ८ । कर्मकरने से आत्मज्ञान न होतसन्ते भी तुम ९ । पुरुषबिषे १० । अर्थात् नर शरीराभिमानी तुमबिषे कर्मबन्धन न होगा इससे ११ । अन्य प्रकारान्तर १२ । नहीं १३।है १४। अर्थात् सकामकर्म हैं सो

बारम्बार जन्ममरणका हेतुहैं। तथाच। "* योनिमन्येप्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः स्थाणुमन्येनुसंयन्ति यथाकर्मयथाश्रुतम्"।ताते एषणात्रयके न्यासपूर्वक आत्मअध्यासमें असमर्थ पुरुषको केवल विहित निष्काम कर्महीं कर्त्तव्य है कि जिस करके कर्म से १५। नहीं १६। लिपायमानहो १७। अर्थात् विहित निष्कामकर्म करतसन्ते जो कदापि अज्ञान किंवा आपत्त्यादिकरके तुमसेअशुभ कर्म भी बन आवेगा तो सो कर्म तुमको हानिकरनेको समर्थ न होगा क्यों जो वो कर्म किसी कामनाकोलेके नहींहुआ २॥

तात्पर्य ॥

एषणात्रय बिषे दृढ वैराग्य भयेबिना संन्यास कर्त्तव्य नहीं क्योंकि वैराग्यविना संन्यास जो कि मोक्षमें आदि साधनहै सो मोक्षका साधक नहोयके पतितत्व का हेतुहोगा क्यों जो वैराग्य विना अन्तःकरणसे कामना निवृत्त होती नहीं अरु कामनाकी निःशेष निवृत्ति विना वृत्तीकी एकाग्रता पूर्वक आत्माभ्यास होने का नहीं तब मोक्ष कहां किन्तु कदापि नहीं ताते वैराग्य विनाका संन्यास मोक्षका हेतु नहीं। अरु संन्यासाश्रम करने से कर्माधिकार रहे नहीं ताते देव पितृ आदिकों के अर्थ किंवा भोग्य कामनार्थ कर्म बने नहीं तब देव पितृ आदिकों के लोक की प्राप्ति अथवा कामना की सिद्धिसे भ्रष्टहोय नीचगति की प्राप्तिहोगी ताते एषणात्रयसे दृढ वैराग्यभये बिना संन्यास न लेके विहित जे वेदोक्त कर्म हैं सो निष्काम कर्त्तव्य हैं क्यों जो एषणा के त्यागपूर्वक संन्याससहित आत्मअध्यास में असमर्थ पुरुषको सिवाय विहित निष्काम कर्मोंके कर्मबंधनोंकी निवृत्ति होनेके अर्थ अन्य उपाय कोईनहीं ॥

सम्बन्ध ॥

प्रथम मंत्रमें मुमुक्षुके अर्थ एषणाके त्यागपूर्वक आत्मज्ञान प्रतिपादनकिया। अरु इस द्वितीयमंत्रसे आत्मोपासनामें अस-

* कठवल्ली उपनिषद्की पंचमवल्ली के ७ वें मंत्र में ॥

अर्थ पुरुषको संसारकी निवृत्तिकेअर्थ विहित निष्कामकर्म प्रतिपादनकिया । अब इन दोनोंका जोकि संसारके क्लेशोंकी निवृत्तिका साधनहैं तिनके त्यागी पुरुषहैं तिनकी निंदाके अर्थ वेद भगवान् तृतीय मंत्रका प्रारंभ करते हैं ॥

असूर्य्या[6] नाम[7] ते[4] लोका[5] अन्धेन[1] तमसाऽऽ[2] वृता[3]ः । तां[15]स्ते[13] प्रेत्या[14]भिगच्छन्ति[16] ये[8] के[9] चात्मह[10]नो[11] जना[12]ः ॥ ३ ॥

पदान्वयः ॥

अंधेन[1] तमसा[2] आवृताः[3] ते[4] लोका[5] असूर्य्या[6] नाम[7] ये[8] के[9] च[10] आत्महनः[11] जनाः[12] ते[13] प्रेत्य[14] तान्[15] अभिगच्छन्ति[16] ३ ॥

पदार्थ ॥

अदर्शनात्मक[1] अज्ञानसे[2] आवृतहैं[3] सो[4] लोक[5] असूर्य्या[6] नामहैं[7] जे[8] कोई[9] एक[10] आत्महत्यारे[11] पुरुषहैं[12] सो[13] मरके[14] तिनै[15] (लोकोंमें) निश्चयप्राप्तहोतेहैं[16] ॥ ३ ॥

भावार्थमंत्रतीसरेका ॥

हेसौम्य जो कि पूर्वकथितप्रकारसे विपरीत आचरण करनेवाले पुरुष हैं । अर्थात् प्रथम कहा जे मुमुक्षुके अर्थ आत्मज्ञान अरु तिसकी असमर्थतामें निष्काम विहितकर्म तिनको त्यागके कामुक अरु निषिद्ध कर्मोंकोही करते रहतेहैं ऐसे जे अविवेकी पुरुषहैं तिनको देहत्यागान्तर जिन लोकोंकी प्राप्तिहोतीहै तिसको कहतेहुये वेदभगवान् उन पुरुषोंकी निंदाकरतेहैं ॥ जे अदर्शनात्मक १। अज्ञानकरके २। आवरणहुये ३। जे ४। लोकहैं५। अर्थात् आत्माके यथार्थदर्शनकी योग्यतानहीं जिनमें ऐसेजे अदर्शनात्मक अज्ञानावृत देवताआदि शरीररूपी लोक सो सर्व असूर्य ६ नामहैं७। अर्थात् असूर्यलोक उसको कहतेहैं कि नहींहै ज्ञानरूपी प्रकाशता जिनमें कि जिसकरके अपनेआप आत्माको यथार्थ अनुभवकियाजाय ऐसे जे देवादि तृणपर्यन्त शरीररूपी

लोक तिनको असूर्य अथवा असुर लोक इन नामोंसे कहते हैं तिन लोकोंमें जे ८। कोई ९। कि १०। आत्महत्यारे ११ पुरुष हैं १२ अर्थात् जिन पुरुषोंको अपनेआप अजर अमर अक्रिय अद्वैत आत्माके स्वभावका अर्थात् सोहमस्मिभावका अभाव है अर्थात् परमात्माको अपना आत्मत्वकरके न जानना सोई आत्माका हननहै क्योंकि जो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वरूप आत्मा तिसको अविद्यादोषसे अन्योंके धर्मको न जानतेसन्ते तुच्छ पापी अपराधी जन्म मरणवान् विपरीतभावसे जानना। तथाच। "* यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति"। इत्यादि। सोई उस आत्माका परम निरादर करनाहै सो आत्माका निरादरकरनाही हननकरना है। दृष्टान्त। जैसे स्त्रीको पृथक्शय्यारूप निरादर करनाही उसका हननकरना शास्त्रकारोंने कहाहै। तैसेही वो पुरुष कि जिन्होंने अपनेआप सत्यस्वरूपको यथार्थ न जानके अरु जाननेका साधन अन्तःकरणकी शुद्धि तिसका साधन विहित निष्कामकर्म जो कि परम्पराकरके आत्मज्ञानोत्पत्तिका हेतु है तिसको भी यथोचित न करके जीवतपर्यन्त सकाम किंवा निषिद्ध कर्मोंकाही अनुष्ठान करते हैं। सो १३। शरीर त्यागके १४। अपने कर्मानुसार उन असुरनामलोकमें १५। निश्चय प्राप्तहोते हैं १६। अर्थात् अज्ञानी पुरुष जो कि अविद्या दोषकरके अपने सत्यस्वरूप आत्माका अनादररूपी हनन करनेवाले हैं सो देह त्यागके अनन्तर अपने कर्मानुसार देवतासे तृणपर्यन्त शरीररूपी लोकको प्राप्तहोते हैं। तथाच। "† यथाकर्म यथाश्रुतम्"।३॥

यहां असुरलोक कहनेसे जो देवलोकका भी ग्रहणहै सो इस अर्थका अभिप्राय यहहै जो देवताओंके लोक सो देवलोक तहां लोककहिये शरीर अर्थात् देखते भोगते हैं कर्मके फल जहां सो लोक ऐसे जे देवशरीररूपी लोक सो स्वयंप्रकाश सर्वप्रधान सर्वोपरि परमात्माकी अपेक्षामें असुरही कहेजाते है क्यों जो

*बृ० उ० अ० ४ मैत्रेयी ब्रा० विषे। †क० उ० के व० ५ की ७ श्रुति में।

छान्दोग्य बृहदारण्य प्रश्न इन उपनिषदों में इन्द्रियाधिष्ठात देवताओंको असुरकरके वर्णन किया है एतदर्थ देवशरीरको भी असुरलोक कहते हैं ताते देवताके शरीररूपी अदर्शनात्मक अन्धलोक सो अज्ञान अन्धकार से आवृत हैं क्यों जो देवताओंको सदैव विषयोंकीही लालसा रहती है सो विषयलालसा अज्ञान से होतीहै ताते देवता अज्ञानावृत होनेसे अपनेआप सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ जानसकते नहीं । तथाच । "* देवैरत्रापि विचिकित्सितंपुरानहिसुविज्ञेयमणुरेषधर्म्मः" । "† नमेविदुः सुरगणाः" । ताते ऐसे जे अज्ञान अन्धकारसे आवृत देवशरीररूपी असुरलोक तिनमें अज्ञानी सकामी पुरुष जे विषयों की कामनासे देवाराधन करनेवाले हैं सो देहत्यागके अनन्तर प्राप्त होतेहैं । अथवा जे पुरुष कामनाके वशभये भूत प्रेत जड़ादिकों की आराधना करते हैं । अथवा प्रमादकरके आत्मज्ञान विहित कर्म किंवा सकामकर्म जे उत्तम मध्यम निकृष्ट स्वधर्म हैं तिनको त्यागके सदा निषिद्धकर्मोंकाही अनुष्ठान करते हैं सो पुरुष अदर्शनात्मक अर्थात् नहींहोता यथार्थ विवेक आत्मानात्म वस्तु का जिसकरके ऐसा जो अज्ञानरूपी अन्धकार तिसकरके आच्छादित हैं पशु पाषाण वृक्षादि शरीररूपी लोक तिसबिषे देह त्याग के अनन्तर निश्चय प्राप्तहोते हैं । ताते सकाम कर्मी किंवा सर्वथा कर्मत्यागके केवल विषयसेवी पुरुषसो देहत्यागके अनन्तर अपने कर्मानुसार देवतादि तृणपर्यन्त स्थावर जंगमरूप अंधतम अज्ञानावृत शरीरको प्राप्तहोते हैं ॥

तात्पर्य ॥

जो पुरुष मोक्षकाहेतु आत्मज्ञान अरु तिसकी प्राप्तिका साधन विहित निष्काम कर्म तिन दोनोंको त्यागके केवल सकाम किंवा निषिद्ध कर्मोंको ही करतेहैं सो पुरुष अपने आपको नाना प्रकार की योनिरूप नरक में प्राप्त करनेवाले ताते आत्महत्यारे

* क० उ०की१ व०की २१ वीं श्रुति । † भ गी०अ०११ वें के श्लोकमें ॥

होते हैं। एतदर्थ पुरुषको उचित है जो वेदवाक्यानुसार आत्महत्यारा न होयके यथार्थ आत्मज्ञानद्वारा अपनेआपकी रक्षाकरनेवाला आत्मरक्षक होय।

सम्बन्ध ॥

इस तृतीय मंत्रबिषे जे पुरुष अज्ञान करके सकाम कर्म किंवा निषिद्ध कर्म करनेवाले हैं सो अपनेआपका हननकरनेवाले ताते आत्महत्यारे अंधतमको प्राप्तहोते प्रतिपादन किये॥ अब उन आत्महत्यारे से विपरीत विद्वान् आत्मरक्षक ज्ञानी तिस आत्मतत्त्व को साक्षात् अपनाआप अनुभवकरके मोक्षहोते हैं तिस आत्मतत्त्वको वेद भगवान् आगे चतुर्थ मंत्रसे विपरीत गुणवान् प्रतिपादन करते हैं। ॐ तत्सत्॥

अनेजदेकम्मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ ४॥

पदान्वय ॥

एतत् अनेजत् एकं मनसो जवीयः पूर्वं अर्षत् देवा न आप्नुवन् तिष्ठत् तत् धावतः अन्यान् अत्येति मातरिश्वा तस्मिन् अपः दधाति॥

पदार्थ ॥

यह [आत्मा] कम्पमाननहीं एक मनसे शीघ्रगामी पहिले गयाहै देवतालोक [तिसप्रति] नहीं प्राप्तहोते अविक्रिय सोई शीघ्रचलते अन्योंको पछिछोड़ताहै वायुअंतरिक्षमेंचलनेवाला तिसबिषे कर्मोंको धारताहै॥

भावार्थ मंत्रचौथेका ॥

हे सौम्य पूर्वकथित प्रकारके अविद्वान् आत्महत्यारे तिनसे विपर्यय जे प्रथममंत्रानुसार आत्मरक्षक ज्ञानवान् जिस अजर अमर अक्रिय आकाशवत् सर्वव्यापी परमात्मा जिसकरके चरा-

चर जगत् आच्छादितहै तिसको अपनाआप अनुभवकरके तद्रूप होतेहैं सो आत्मा इस मंत्रबिषे प्रतिकूल गुणोंकरके कहागया है तथापि इस में कुछ विरुद्ध नहीं क्यों जो श्रुतिने आत्माको निश्चल भी कहाहै अरु मनसे भी आगे जानेवाला कहाहै ताते प्रत्यक्ष विरुद्ध भाषेहै तथापि कुछ विरुद्ध नहीं क्यों जो आत्मा निरुपाधि होनेसे आकाशवत् सर्वत्र अचल एकरस क्रिया से रहित शुद्ध कहाजाता है सोई कहते हैं । यह १। आत्मा सर्वका अपनाआप अचलहै २ । अर्थात् आकाशवत् सर्व क्रियासे रहित है फेर कैसाहै । एकहै ३ । तथाच । "*एकमेवाद्वितीयम्" । ऐसा जो अद्वैत अचल अक्रिय आत्मा है सोई आत्मा मन से ४ । आगे जानेवालाहै ५ । अर्थात् सर्व देहोंविषे अन्तःकरणकी संकल्प विकल्पात्मक वृत्तिरूपी जे मन जिसको कि देह में रहतसन्ते अर्ध क्षणमात्र में देश देशान्तर किंवा अति दूर ब्रह्मलोक पर्यन्त संकल्पद्वारा जाने की शक्ति होने से शीघ्रगामी संज्ञादी गई है तिस मनसे भी आगे जानेवाला है । अरु जहां जहां संकल्पद्वारा मन जाताहै तहां तहां मनसे पहिलेही ६ गया है ७ । अर्थात् जहां जहां मन जाताहै तहां तहां सर्वत्र सत्तारूप सिद्ध है ताते मनसे भी प्रथमगया कहतेहैं तिस आत्मा को देवता ८ । नहीं ९ । प्राप्तहोते १० अर्थात् उस आत्माको चक्षुरादि इन्द्रियरूप देवता नहीं प्राप्तहोते क्यों जो चक्षुरादि इन्द्रियों का अधिष्ठाता मन तिसकाभी विषय आत्मा नहीं तब इंद्रियोंका विषय कैसे होगा कदापि न होगा इसही से कहा है जो देवता उस आत्मा को नहीं प्राप्त होते सो आत्मा अविक्रिय है ११ । अर्थात् आकाशवत् परिपूर्ण अक्रिय है उसही आत्मतत्त्व के प्रकाश में मनआदि इन्द्रियां अपने २ विषयों को प्राप्त होती हैं इस हेतु से आत्मा सर्वव्यापी सर्वत्र अक्रिय सिद्ध भया । ऐसा जे सर्वत्र एकरस अक्रिय आत्मा है सोई आत्मा

* छान्दोग्यउपनिषद् के छठे प्रपाठकके दूसरे खण्डकी श्रुति में ॥

१२। आपशीघ्र चलते १३। अन्यों को १४। पीछे छोड़जाता है १५। अर्थात् आत्मा सर्वत्र एक रस अक्रिय निरुपाधिरूप से उपाधिकृत क्रियावान् सम्पूर्ण संसारकी विशेष क्रियाको अनुभवकर्त्ता है। अथवा अविवेकी जे मूढ़ पुरुषहैं तिनको आत्मा देह २ प्रति भिन्न भिन्न भासे है अरु तिस बिषे सर्व उपाधिके धर्मको आत्माही के धर्म मानते हैं ताते उन पुरुषों को आत्मा जन्म मरणवान् भासे है परन्तु वास्तव करके आत्मा आकाशवत् परिपूर्ण सर्वत्र सर्व क्रिया से रहित अपने आपबिषे स्थितहै तिस आत्म तत्त्व बिषे १६। अन्तरिक्ष में चलनेवालावायु १७। कर्मोंबिषे १८। धारता है १९। अर्थात् जिस बिषे सर्व ब्रह्मांड ओतप्रोत है ऐसा जे सूत्रात्मा कि जिसके आश्रय सर्व ब्रह्माण्ड की क्रिया होती है सो आत्मतत्त्वकी सत्ताके आश्रय सर्व ब्रह्माण्डके कर्मोंको अपने बिषे धारता है। तथाच। "भिषास्माद्वातः पवते" इत्यादि॥

तात्पर्य॥

प्रथम मन्त्र करके कहा जो यह सर्व नाम रूपात्मक जगत् परमात्मा करके आच्छादितहै। तिस परमात्माका स्वरूप मुमुक्षु को भलीप्रकार जाननेके अर्थ इस मन्त्र बिषे उपाधि निरुपाधि द्वारा कर्त्ता अकर्त्ता आदि भाव से वेद भगवान् ने कहाहै॥

सम्बन्ध॥

जो कि इसचतुर्थ मन्त्रसे मुमुक्षु के बोधार्थ आत्माको उपाधि द्वारा गमनादि धर्मवान् अरु उपाधिके अभावसे सर्व धर्म रहित शुद्धकहा है। अब इसही अर्थको मुमुक्षु की दृढ़ता के अर्थ वेद भगवान् आगे पंचममन्त्र प्रतिपादन करतेहैं॥ ॐ तत्सत्॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदन्तरस्य सर्व्वस्य तदु सर्व्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

पदान्वयः ॥

तत् एजति तत् न एजति तत् दूरे तत् उ अन्तिके तत् अस्य सर्व्वस्य अन्तः तत् उ अस्य सर्व्वस्य बाह्यतः ॥

पदार्थ ॥

सो आत्मा चलताहै सोई नहीं चलता सोई दूरहै सोई आत्मा समीपहै । सोई इस सर्वके अन्तरहै सोई आत्मा इन सर्वके बाहिर है ॥

भावार्थमंत्र पांचवेंका ॥

हे सौम्य पूर्व चतुर्थमंत्र बिषे आत्मा जो कि सर्व उपाधिसे रहित केवल केवलभाव अपने आपबिषे ज्योंका त्योंकहा तिस आत्माको उपाधि निरुपाधि द्वारा प्रतिकूल गुणोंसे सर्वत्र सिद्ध किया ताते सर्वप्रकार एक विज्ञानघन आत्माही है । तिसआत्मा बिषे उपाधि निरुपाधि का आरोप केवल मुमुक्षुको समझावने के अर्थ वेदने कहाहै । अब पुनः मुमुक्षुके दृढबोधार्थ इस पंचम मंत्र बिषे आत्माको प्रतिकूल गुणोंकरकेही प्रतिपादन करतेहैं ॥

हे सौम्य । सोई आत्मा १। चलताहै २। अर्थात् जंगमशरीर रूपी उपाधिसाथ मिलके गमनागमन क्रियावान् भासताहै ताते चलताहै। अथवालिंग शरीररूपीउपाधि साथमिलकेस्वर्ग नरकादिकों बिषे जाता आवता प्रतीत होताहै सो सर्व उपाधिके धर्म अज्ञानके आश्रय आत्माबिषे कल्पना करतेहैं । जैसे बालक मेघों की धावमानताको देखके अज्ञानके आश्रय चन्द्रमाको चलता कहते हैं । तैसेही अज्ञानके आश्रय शरीरादि उपाधिके धर्मशुद्ध निरुपाधि आत्माबिषे मानतेहैं परन्तु आत्मा सर्वउपाधिसे रहित अक्रिय है सो उपाधिद्वारा चलताहै अरु।सोई आत्मा ३। नहीं ४।

चलता५। अर्थात् जो आत्मादेहादिउपाधि साथमिलके चलताहै सोई उपाधिके अभावसे नहीं चलता । जे विद्वान् आत्मवेत्ता हैं सो *"नेतिनेति" श्रुतिके वाक्यकरके सूक्ष्म स्थूल सर्वउपाधिको गिराय महासूक्ष्म आत्मतत्त्वको आकाशवत् अचल अक्रिय सर्वत्र अनुभव करते हैं ताते वास्तवकरके आत्मा नहीं चलता अरु । सोई आत्मा ६। दूरहै ७। अर्थात् अज्ञानी पुरुषों को आत्मतत्त्व अपना आपहोत संतेभी शतकोटि बर्ष पर्यन्तभी ज्ञानबिना प्राप्त नहीं ताते दूरहै । अथवा ब्रह्मलोकादि यावत् लोकलोकान्तर हैं तहां पर्यन्त भी जानेसे ज्ञानविना अप्राप्यहै ताते आत्मा दूरहै । अथवा आत्मतत्त्व मनबुद्धि इन्द्रियादिकोंका बिषय नहीं एतदर्थ भी दूर है । तथाच † "दूरात्सुदूरे" तातेअज्ञानी पुरुषोंकोआत्मा दूरसे भी दूरहै अरु सोई ८। आत्मा ९। समीप है १० । अर्थात् जो आत्मा अज्ञानियोंको दूरसेभी दूर है सोई आत्मा यथार्थदर्शी ज्ञानवान्को समीप है सो कैसा समीप है । तथाच । ‡ "निहितोगुहायाम्" । बुद्धिरूपी गुहाबिषे सर्वका अपनाआप अनुभवी स्थित है ताते अत्यन्त समीप है । अरु सोई ११ । इस १२ । सर्वके १३ । अन्तर है १४ । अर्थात् जो आत्मा विद्वानोंका अपनाआप है सोई सम्पूर्ण चराचरका अन्तर अनुभवकर्ता अपना आप है । तथाच *"आत्मासर्वान्तर" ताते आत्मा इन सर्वके अन्तर है । अरु सोई १५ । आत्मा १६ । इन १७ । सर्वके १८ । बाहर है १९ ॥ अर्थात् जो आत्मा सर्वके अन्तर है सोई आत्मा आकाशवत् आकाशादि सर्वके बाहर है । तथाच × "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" ॥ ५ ॥

---

* बृहदारण्यउपनिषद्के द्वितीयाध्याय मूर्त्तामूर्त्त ब्राह्मणबिषे ॥
† कठवल्ली उपनिषद्की द्वितीयावल्लीकी २० वीं श्रुतिमें ॥
‡ क० उ० की वल्ली २ की २० श्रुतिमें । *बृ० उ० के अ० ३ अन्तर्यामी ब्रा० में ।
…के तृतीय मुण्डककी दूसरी श्रुतिमें ॥

तात्पर्य ॥

आत्माको चलता न चलता दूर समीप अन्तर बाहर सर्वत्र प्रतिपादनकिया सो केवल मुमुक्षु के बोधार्थ उपाधिका आरोप लेके सर्वप्रकार एक आत्मतत्त्वही प्रतिपादन कियाहै कि जिससे मुमुक्षुका द्वैतभाव अशेष अभावहोय सर्वप्रकार एक अद्वैत आत्मतत्त्वके निश्चयपूर्वक परमशान्ति प्राप्तहोय ॥

सम्बन्ध ॥

चतुर्थ अरु पंचम इन दोनोंमन्त्र से उपाधि निरुपाधिद्वारा विशेष निर्विशेषकरके एक अद्वैत आत्मतत्त्व प्रतिपादनाकिया । अब आगे मुमुक्षुकेअर्थ आत्मविचारकी रीति अरु तिसका फल मोक्ष दो मन्त्रकरके वेदभगवान् प्रतिपादन करते हैं ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

पदान्वयः ॥

यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति च सर्व भूतेषु आत्मानं ततः न विजुगुप्सते ॥

पदार्थ ॥

जे कोई सर्व भूतोंको आत्माविषे ही देखता है फेर सर्व भूतोंबिषे आत्माको तोते नहीं घृणाकरता ॥

भावार्थ मन्त्र छठेका ॥

हे सौम्य जे कोई मुमुक्षु आत्मज्ञानी कि जिसको अपना आप आत्मा संशय विपर्ययसे रहित ज्योंकात्यों अनुभव भया है सो १-२ । सर्व ३ । भूतोंको ४ । आत्माबिषे ५ । ही ६ । देखता है ७ । अर्थात् जे कोई आत्मानुभवी पुरुष हैं सो अव्याकृत से तृणपर्यन्त सर्व कार्यकारणात्मक भूतोंको आत्माबिषेही देखता है । जैसे जलबिषे तरंग तैसे । पुनः ८ । सर्व ९ । भूतोंबिषे १० । आत्माको ११ । देखता है । अर्थात् जैसे सर्वभूतोंको अपनेआप

बिषे तैसेही सर्वभूतोंबिषे एक अपनेआप आत्माको देखता है । जैसे सर्वतरंग बुद्बुदादिकों बिषे एक जलको देखता है । इस प्रकार जलतरंगके दृष्टान्त प्रमाण आत्माबिषे जगत् अरु जगत् बिषे आत्माको देखता है सो । ऐसे देखनेसों १२ । नहीं १३ । घृणा [ग्लानि] कर्त्ता १४ । अर्थात् ग्लानिआदि द्वैतभाव बिषे होतेहैं सो द्वैतभाव अविद्याकरके होता है । तथाच * " यत्र हि द्वैतमिवभवति तदितरइतरम्पश्यति " । अर्थात् अविद्याकरके द्वैतभाव अरु द्वैतभाव बिषे ग्लानिआदि होतेहैं सो अविद्या आत्मज्ञानीकी अशेष निवृत्तभई है तातेही द्वैतभावका अभावभया है इसहीसे एक अद्वैत आत्मभाव निश्चय भया है सो आत्मा सदा शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभावहै इसहीसे ग्लानिआदि नहींकरता । तथाच । † " यस्त्वसर्वमात्मैवाभूत्तत्केनकम्पश्येत् " ॥ इत्यादि ॥

तात्पर्य ॥

जो ज्ञानवान् सम्पूर्ण जगत्को केवल एक अपनाआप आत्माही जानता है सो तिस अभ्यासके बलसे किसी पदार्थ की ग्लानिआदि नहीं करता अर्थात् जिसप्रकार ज्ञानी आत्मवेत्ता सर्वात्मभाव के दृढअभ्याससे ग्लानीआदि नहीं करते तैसेही सर्व मुमुक्षुको एकात्मविचार के अभ्यास बलसे किसी भी पदार्थ बिषे रागद्वेषादि कुछ भी कर्त्तव्य नहीं ॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्रबिषे मुमुक्षुको सर्वात्मभाव देखाय सूचनाकिया कि आत्मअभ्यासवाले को किसी पदार्थमें भी ग्लानिआदि कर्त्तव्यनहीं । अब ७ वें मन्त्रकरके सर्वात्मअभ्यासीको वेद भगवान् मोक्षका स्वरूप कहते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

यस्मि[2]न् स[3]र्वाणि भू[4]तान्या[5]त्मै[6]वा[7]भूद्विजा[1]नतः । त[10]त्र
को[11] मो[12]हः [13]कः शो[14]क ए[15]कत्वमनु[16]पश्यतः ॥ ७ ॥

---

* बृ० उ० के अ० ४ [illegible] बिषे । † [illegible]

पदान्वयः ॥

विजानतः यस्मिन् सर्व्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत् एकत्वं अनुपश्यतः तत्र कः मोहः कः शोकः ॥

पदार्थ ॥

भलीप्रकार जाननेवालेको जिसकालमें सम्पूर्ण भूतोंको आत्मा ही है एकत्व देखनेवालेको तिसकालमें क्यामोह क्या शोक ॥ ७ ॥

भावार्थमन्त्र सातवेंका ॥

हे सौम्य पूर्वकथित आत्माको वेद गुरु अरु अपने अनुभव द्वारा भलीप्रकार जाननेवालेको १ । जिसकालमें २ । सम्पूर्ण ३ । भूतोंको ४ । आत्मा ५ । ही ६ । है ७ । अर्थात् आत्मकामा मुमुक्षु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यद्वारा श्रुतिके । * "सर्व्वंखल्वि-दंब्रह्म" † "नेहनानास्तिकिंचन" । इत्यादि वाक्यों करके साक्षात् अपने अनुभवसे जिसकालमें यावत् स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणात्मक सर्व भूतोंको । ‡ "आत्मैवेदंसर्वं" । श्रुतिके प्रमाण से अपनाआप आत्माही है ऐसा जानता है । अरु ऐसाजान के एकत्व ८ । देखनेवालेको ९ । तिसकालमें १० । क्या ११ । मोह । १२ । क्या १३ । शोक १४ ॥ अर्थात् जिसप्रकार श्रुतियों के वाक्य आचार्य द्वारा श्रवणकरके अपने आत्माको सर्वत्र आत्मभाव से अनुभव कियाहै तिस आत्मतत्त्वका एकत्व देखता है । जैसेघट मठ सरावले आदि यावत् मृत्तिका का कार्य हैं तावत् व्यवहार दृष्टिसे सर्वके नामरूप क्रिया पृथक् २ भासे हैं परन्तु परमार्थ दृष्टिसे घट मठादिकोंके नामरूप मृत्तिका बिषे । " * वाचारंभणं विकारोनामधेयं „ । वाचारंभणमात्र अर्थात् कल्पितहैं † । " मृत्ति-केत्येव सत्यम् " । एक मृत्तिकाही सत्य है । तैसेही सम्पूर्ण नाम

---

* छां० उ० प्र० ४ विषे । † बृ० उ० के अ० ६ विषे । ‡ छां० उ० के प्र० ७ विषे ।
* † छां० उ० प्र० ६ की प्रथम श्रुति में ॥

रूपात्मक जगत् व्यवहार दृष्टिसे पृथक्२ भासैहै परन्तु वास्तव में परमार्थ दृष्टि से। * " एषोऽइदात्म्यमिदꣳ सर्वम् "। सम्पूर्ण चराचर एक आत्माही है। इसप्रकार श्रुतियों के वाक्य प्रमाण अपने आप अनुभव से सर्वत्र आत्माही के एकत्वका निश्चय-पूर्वक दृढ़ अभ्यास करताहै तिसकालमें अर्थात् जब कि अभ्यास द्वारा अन्तःकरणकी सर्वात्मभाव रूपावृत्ति दृढ़ उदयहोतीहै तिस विज्ञानअवस्थामें क्या मोह अरु क्या शोक किन्तु कुछभीनहीं क्यों जो †। " तरति शोकमात्मवित् "। आत्माको जाननेवाला शोक को तरता है। अर्थात् जिस पुरुष ने सर्वत्र एक अपने आप आत्माही को अनुभव किया है अरु तिस बिषे अभ्यास द्वारा स्थितिपाया है सो पुरुष शोक मोहादिकों से तरजाता है। ताते आत्मवेत्ताको शोक मोहादि नहीं क्यों जो शोक मोहादिकों का कारण जे कामना सो तो ज्ञानवान्की। " इहैव सर्वे प्रविलीयन्तिकामाः "। यहां विज्ञान अवस्था में ही सर्वकामना अभाव होजाती है। अरु कामनाका कारण अविद्या है सो ज्ञानवान् की अविद्या आचार्य से तत्त्वमस्यादि उपदेश पावतेही अपने कार्य कामना अरु तज्जन्य शोक मोहादि सहित अभाव होजाती है। इसही हेतु से जिसज्ञानवान् को सर्वत्र एक अपनाआप आत्मा ही निश्चय भयाहै तिसमहात्माको शोकमोहादि कदापि नहीं७॥

तात्पर्य॥

। " यस्तुसर्व्वाणिभूतानि "। यहां से लेके। " एकत्वमनुपश्यत "। यहां पर्यन्त ६—७ दो मन्त्र हैं तिनमें सातवें मन्त्रका तृतीयपाद। " तत्र को मोहः कः शोकः "। जो कि अन्वय की रीति से चतुर्थपाद है तिसको छोड़के चारपाद छठे मन्त्रके अरु तीनपाद सातवें मंत्र के इसप्रकार सातपाद १॥। पौने दो मन्त्र करके वेद भगवान्ने मुमुक्षु के अर्थ आत्मविचारकी रीति संक्षेप

* छां० उ० के प्र० ६ के ८वें खण्ड की श्रुति में † छां० उ० प्र० ७में के प्रथम खण्डकी श्रुति में॥

मात्र सूचनकिया है । अरु सातवें मन्त्रके तृतीयपाद करके वेद भगवान् ने ज्ञानवान् के बिषे शोक मोहका अभाव रूप लक्षण अरु सोई मुमुक्षु के अर्थ फलकहा है क्यों जो ज्ञानवान् के बिषे अविद्याकी निवृत्ति का लक्षण शोक मोहादिकोंका न होनाही है। अर्थात् अज्ञानका कार्य शोक मोहादि सोई अज्ञानका लक्षण ताते अज्ञान के लक्षण जे शोक मोहादि तिनकी जे निवृत्ति सोई अज्ञान की निवृत्ति का लक्षण ताते ज्ञानवान् के बिषे अज्ञान के कार्य जे शोक मोहादि तिनके अभावद्वारा अज्ञानकी निवृत्ति मानके तिसको बुद्धिमान् ज्ञानी कहते हैं । ताते शोक मोहका न होना भी ज्ञानवान्के लक्षण हैं । अरु मुमुक्षु जब जानताहै कि। "तरतिशोकआत्मवित्"। आत्मवेत्ता शोकको तरताहै तब शोकतरनेकेअर्थ आत्मज्ञानका जिज्ञासुहोय आचार्य के समीपजाय श्रुति के तत्त्वमस्यादि वाक्यद्वारा यथार्थ आत्मज्ञानपाय शोक मोहादिकोंसे रहितहोताहै ताते मुमुक्षुको आत्मज्ञानका फल शोक मोहादिकोंका अभाव होनाहीहै ताते। "तत्र को मोहः कः शोकः"। इस पादकरके शोक मोहादिकोंका जो अशेष अभाव सोई ज्ञानवान्के लक्षण अरु मुमुक्षुको आत्मज्ञानका फलकहा। अरु शोक मोहके अभाव कहनेसे यावत् अविद्याका कार्यहै तावत् सर्वका अभाव ग्रहणहोता है क्यों जो वेद का कहना आक्षेपपूर्वक है क्योंकि सर्वात्मभाव से आत्माका अनुभव करनेवाले जे पुरुष हैं सो ज्ञानवान् आत्मवेत्ता तिनमें यथार्थ ज्ञानकरके अविद्या अरु तज्जन्यद्वैतभाव तिसका निःशेषअभावभया है तहां शोक मोहकहां किन्तु कदापिनहीं । ताते ज्ञानवान्केबिषे शोक मोह उपलक्षणकरके षट्ऊर्मीसहित अविद्याका अभावसमझना । तहां शोक मोह मनकी ऊर्मी, क्षुधापिपासा प्राणकी ऊर्मी, जन्म मरण देहकी ऊर्मी । ताते यह षट् ऊर्मी मन प्राण शरीरकी हैं आत्माकी नहीं आत्मा सर्व ऊर्मीसे रहित केवल शुद्ध विज्ञानघन आकाशवत् अपने बिषे आपस्थित

है। एतदर्थं पूर्वकथितप्रकारसे एषणात्रयके त्यागपूर्वक षट्ऊर्मीसेरहित जे शुद्ध स्वयंप्रकाश आत्मातिसकी सर्वात्मभावसे अपनेआपविषे अभेदभावना कि सो सर्वात्मा मैंहौं। अर्थात् यह जो अन्तःकरणकी अहंकाररूपा निश्चय आत्मकवृत्ति कि सो सर्वात्मा मैं हौं तिसको गिरायके शुद्ध चैतन्यघन अफुर स्वयंप्रकाश सर्वविशेषतासे रहित साक्षात् अपनेआपविषे आपहोता है ऐसे दृढअभ्यासवाले जे ज्ञानवान्। "नतस्यप्राणा उत्क्रामन्ति"[1] "तत्रैवसमवनीयन्ते"[2] "ब्रह्मैवसन्ब्रह्माप्येति"[3] तिसकेप्राण देहावसानसमये देहसे न निकलके तहांही अपनेअधिष्ठान चैतन्यआत्माबिषे लीनहोतेहैं ताते ज्ञानवान् जे आत्मअध्यासी पुरुष सो सर्व उपाधिसेरहित जहांहै तहां ब्रह्महीहै। तथाच "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति,,॥

सम्बन्ध॥

इसमंत्रविषे मुमुक्षुको आत्मबिचारकहके आत्मज्ञानका फल शोक मोहादि सर्वविकार अरु तिनकाकारण अविद्या तिसकेअभावपूर्वक मोक्षकहा अब ज्ञानवान् ब्रह्मआत्माकी एकतारूप अध्यासके बलसे अन्त में देहसे न निकलके यहांही इस शरीरमें जिस ब्रह्मसाथमिलके ब्रह्महीहोताहै तिस परमात्मा परब्रह्मका स्वरूप विधिमुख अरु निषेधमुखकरके वेदभगवान् आगे अष्टम मंत्रकरके प्रतिपादनकरतेहैं॥ ॐ तत्सत्॥

सँ पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः। स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ ८॥

पदान्वयः॥

शुक्रं अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम् सः

१-२ बृ० अ० ६ के शारीरक ब्रा०की ४ श्रुतिमें। ३ बृ० उ०के में।

पर्य्यगात् कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः शाश्वतीभ्यः समाभ्यः याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात् ॥ ८ ॥

पदार्थ ॥

शुद्ध कायारहित छिद्ररहित शिरारहित निर्मल पापरहित है सो व्यापकहै क्रांतदर्शी मनकाईश सर्वोपरि स्वयंविद्यमान यथाभूतकर्मफल साधनसे अनन्तकालस्थायी प्रजापतिकेअर्थ पदार्थों को विभागकरताभया ॥ ८ ॥

भावार्थ मन्त्र आठवेंका ॥

हे सौम्य पूर्वकथित प्रकार जे मुमुक्षु एषणासे रहित होयके श्रुतियों के । " * स आत्मातत्त्वमसि" *" अयमात्माब्रह्म " † "एतद्वैतत्" । × "तत्त्वमेवत्व मेवतत्" । इत्यादि वाक्यों प्रमाण ब्रह्मआत्माकी एकतारूप अभ्यास करनेवाला सो जिसपरमात्मा साथ ' नदी समुद्रवत् ' अभेद होताहै सो परमात्मा हेसौम्य । शुद्ध है १। अर्थात् ज्योतिमय दीप्यमान स्वयंप्रकाश है । पुनः कैसा है कायारहित अकाय है २। अर्थात् समष्टि सूक्ष्मउपाधि लिंगशरीर ‘पुर्यष्टिका’ अरु व्यष्टि सूक्ष्मउपाधि महत्तत्त्वादि अष्ट प्रकृति विकृति अथवा समस्त सूक्ष्मशरीरों की समष्टता हिरण्यगर्भ । अर्थात् सूक्ष्मशरीररूपी व्यष्टिसमष्टि उपाधिसे रहित ताते अकाय है । पुनः कैसा है छिद्ररहित अछिद्र है ३। अर्थात् इन्द्रियों के गोलकरूपी छिद्र तथा फोडा इनसे रहितहै । पुनः कैसाहै शिरा रहित अशिरा है ४। अर्थात् शिराकहिये नाडी तिनकरके भी रहित है । यहांछिद्र अरु नाड़ियों के कहने से व्यष्टि स्थूलशरीर रूपी उपाधि अरु समष्टि विराट् शरीररूपी स्थूलउपाधि तिनसे रहित है । पुनः कैसाहै शुद्धहै ५। अर्थात् मूलप्रकृति माया अरु तिसका कार्य तिनसे रहित शरदकाल के आकाशवत् निर्मल सदाशुद्ध है । पुनः कैसा है पापरहित अपाप है ६। अर्थात् धर्म्म अधर्म्मकर्त्ता अकर्त्ता पुण्य पाप स्वर्ग नरक जन्म मरण दुःखसुख

* छांदोग्य* मांडूक्य † कठवल्ली, × कैवल्य,। उपनिषदों विषे ॥

बंध मोक्षआदि यावत् द्वंद्वरूपी पापहैं तिनसर्वसे रहित अपापहै । सो ७। अर्थात् जो परमात्मा सर्वउपाधिसे रहित सदाशुद्ध प्रतिपादन किया है सो परमात्मा व्यापक है ८। अर्थात् आकाशसे भी महासूक्ष्म आकाशादि सर्वविषेव्याप्तहै ॥ हेसौम्य जोपरमात्मा सर्व उपाधिसे रहित परम शुद्ध जिसको श्रुतियोंने ।"† अस्थूल मनएव ह्रस्वमदीर्घमलोहित "। इत्यादि नेतिनेति द्वारा निषेध मुख प्रतिपादन कियाहै सोई सर्वव्यापी परमात्माको इस मंत्र के पूर्वार्ध ।"शुक्रमकायमव्रण "।इत्यादि करके निषेधमुख प्रतिपादन कियाहै अब उसही परमात्माकों इसही मन्त्रके उत्तरार्ध करके विधि मुखद्वारा सविशेष प्रतिपादन करते हैं । हे सौम्य जो परमात्मा सर्व उपाधिसे रहित सदाशुद्ध आकाशवत् सर्वव्यापी कहा है सोई परमात्मा । कवी ९ । अर्थात् क्रान्तदर्शी सर्वका द्रष्टा है । तथाच । *„ नान्यतो ऽस्ति द्रष्टेत्यादि,,। पुनः कैसाहै मनीषी १०। मनका जाननेवाला सर्वज्ञ ईश्वरहै । पुनः कैसा है सर्वके ऊपर है ११। अर्थात् आकाशादि किसी करके भी आच्छादित न होतसन्ते आकाशादि सर्व को आच्छादन करनेवाला सर्व की प्रथमावधि है ताते सर्वके ऊपर है । अथवा सूर्य चन्द्र पृथिवी जल अग्नि बायु काल दिशा देव पितृआदि भूत भौतिक यावत् जगत् है तिस सर्वके ऊपर सर्वका नायक सर्व को अपनी आज्ञामें चलावने वाला है ताते सर्व के ऊपर है । तथाच । "× एतस्य वाऽक्षरस्य प्रशासने गार्गी सूर्य्यो चन्द्रमसौ विध्रत तिष्ठति,,। इत्यादि । पुनः कैसा है स्वयंभू है १२। अर्थात् आकाशादि जिनके २ ऊपर है सो सर्व अपनी इच्छा से आपही हुआहै अरु आप स्वतः सिद्ध है ताते स्वयम्भू है । ऐसा जो स्वयम्भू सर्वोपरि सर्वज्ञ स्वयम्प्रकाश सर्वका द्रष्टा नित्यशुद्ध बुद्धमुक्त स्वभाव परमात्मा परमेश्वरहै सो। अनन्तकालस्थायी १३।

† यह बृहदारण्य उ० के ५ में अध्याय के ८ में ब्राह्मणविषे ॥
*× बृ० उ० के अ० ५ में के अष्टमब्राह्मण की ११ तथा ९ श्रुतिमें ॥

संवत्सरके अर्थ १४। अर्थात् संवत्सरनाम प्रजापति के अर्थ । यथा भूतकर्म फलसाधनसे १५। अर्थों को १६। अर्थात् कर्त्तव्य पदार्थोंको जो कि अग्निहोत्रादि रूपसे कर्त्तव्य हैं। यथा विभाग से करताभया १७॥ ८॥

तात्पर्य ॥

। "ईशावास्यमिदᳬसर्वं"। इस प्रथम मन्त्रकरके परमात्मा अरु तिसकी प्राप्तिका साधन एषणात्रय से रहित संन्यासपूर्वक आत्मज्ञान मुमुक्षु के अर्थ सूचना किया १। अरु। "कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि"। इस दूसरे मन्त्रकरके एषणात्रयके त्यागपूर्वक आत्म-अभ्यासमें असमर्थ पुरुष को कर्म्मबन्धनों की निवृत्तिके अर्थ बिहित निष्काम अग्निहोत्रादि कर्म कर्त्तव्य प्रतिपादन किया २॥ अरु। "असूर्य्यानामतेलोका"। इस तृतीय मंत्रकरके पूर्व कथित उभयका जो त्यागी पुरुष है अर्थात् आत्म अभ्यास अरु विहित निष्काम कर्म जोकि उत्तम मध्यम रीतिसे परमार्थ का हेतु हैं तिनको त्याग के केवल सकाम अथवा निषिद्ध कर्मोंको ही करते हैं तिन पुरुषों को अपने कर्मानुसार असुरलोक प्राप्ति द्वारा तिनकी निन्दा प्रतिपादनकिया॥ ३॥ अरु इनतीन मंत्रों में तीनप्रकार के अधिकारी सूचित किये तहां प्रथम मंत्र प्रमाण आत्माभ्यासी पुरुष मोक्षका भागी उत्तमाधिकारी। अरु दूसरे मंत्र प्रमाण विहित निष्काम कर्म्म कर्त्ता पुरुष ब्रह्मलोक का भागी मध्यम अधिकारी। अरु तृतीय मंत्र प्रमाण केवल सकाम अरु निषिद्धकर्म सेवी अधर्मी असुरलोक अरु अन्धतम के भागी आत्महत्यारे पुरुष निकृष्ट अरु अधम अधिकारी। प्रतिपादन किये। अब प्रथम मंत्र करके आत्मरक्षार्थ जिस परमात्मा की अभेद भावनारूप अभ्यास सो उत्तमाधिकारी मुमुक्षु के अर्थ कहा है तिस परमात्मा को भलीप्रकार से जानने के अर्थ। "अनेजदेकं"। अरु। "तदेजति"। ४-५ इन चतुर्थ पंचमदो मंत्रकरके प्रतिपादन किया। अरु उस परमात्मतत्त्वके विचार अभ्यास

की रीति मुमुक्षु के अर्थ। "यस्तुसर्व्वाणिभूतानि"। अरु "यस्मिन्सर्वाणिभूतानि"। ६—७ इन षष्ठ सप्तम दो मंत्र करके प्रतिपादन किया। अरु सप्तममंत्रके तृतीय पाद करके शोक मोह के अभावद्वारा ज्ञानवान्को सम्यक्ज्ञान प्राप्तिका लक्षण देखाया। अरु मुमुक्षु पुरुष सर्वात्मभावना रूपसे ब्रह्म आत्माकी अभेद भावनारूप अभ्याससे परमात्मा के साथ। "* यथानद्यःस्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्तिनामरूपेविहाय। तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परंपुरुषमुपैतिदिव्यम्"। इत्यादि श्रुतिप्रमाणसेनदी समुद्रवत्भेदसेरहित अभेद एकहोताहै तिस परमात्माका स्वरूप। 'स पर्यगाच्छुक्रमकायं"। इस अष्टम मंत्रकरके निषेधमुख अरु विधिमुख प्रतिपादनकिया अर्थात्। "† ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति"। ब्रह्मवेत्ता ब्रह्महीहोताहै। सो कहके ब्रह्मकास्वरूप ज्ञानवान् की परम गति देखाय प्रथममंत्रके अनुसार अधिकारी मुमुक्षु ज्ञानवान्का प्रकरण चतुर्थ से अष्टममंत्रपर्यन्त पांच मंत्र करके वेद भगवान् ने प्रतिपादन किया॥ यहां पर्यन्त इस उपनिषद् का पूर्वार्ध प्रतिपादनकरके आगे मध्यम अरु कनिष्ठ अधिकारी का प्रसंग ९ नवममंत्रसे १८ अष्टादशमंत्र पर्यन्त अर्थात् ग्रन्थकी पूर्णतापर्यन्त १०दश मंत्र करके वेदभगवान् इस उपनिषद्का उत्तरार्द्ध प्रतिपादन करते हैं॥ ॐ तत्सत् इति शुक्लयजुर्वेद माध्यंदिनिशाखा के ईशावास्य मंत्रोपनिषद्के पूर्वार्द्धकी भाषा टीका समाप्त शुभम्॥

सम्बंध॥

इस मंत्र बिषे परमात्मा को निषेध अरु विधिमुख द्वारा प्रतिपादन करके प्रथम मंत्रानुसार उत्तमाधिकारी ज्ञानवान्काप्रसंग प्रकरण समाप्तकिया। अब आगे मध्यमअधिकारी अरु कनिष्ठ अधमाधिकारी का प्रसंग चलेगा तहां प्रथम मध्यमाधिकारी का प्रसंग न कहके कनिष्ठ अधमाधिकारी जे तृतीयमंत्रकरके आत्म-

---

*।† यह मुण्डक उपनिषद् के षष्ठ मुण्ड की ८—९ श्रुतियों में॥

हत्यारे कहे हैं तिनकी जो परलोक गति तिसको पुनः ९ नव में मन्त्रकरके वेदभगवान् प्रतिपादन करतेहैं ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳫं रताः ॥ ९ ॥

पदान्वयः ॥

ये अविद्याम् उपासते [ते] अन्धं तमः प्रविशन्ति य उ विद्यायाम् रताः ते ततः भूय इव तमः [प्रविशन्ति] ॥

पदार्थ ॥

जे पुरुष अविद्याको उपासतेहैं [सो] अदर्शनात्मक अज्ञानमें प्रवेशकरतेहैं [अरु] जे कोई विद्याबिषे रतहैं सो तिससे भी अधिके ऐसे तममें [प्रवेशकरतेहैं] ॥

भावार्थ मंत्र नवम का ॥

हे सौम्य जे १ । अविवेकी सकाम पुरुष अविद्या की २ । उपासनाकरतेहैं ३ । अर्थात् ब्रह्मविद्यासे विपर्यय सो अविद्या अग्निहोत्रादि लक्षणरूप कर्म सो फल प्राप्तिके अर्थ निरन्तर अनुष्ठानकरतेहैं सो अदर्शनात्मक ४ । अज्ञानरूपी अन्धकारमें ५ । प्रवेशकरतेहैं ६ । अर्थात् जे पुरुष कामना सहित अग्निहोत्रादि कर्म का अनुष्ठान करतेहैं सो स्वर्गादिकों में स्वकर्मके फल को भोग के नहीं है अपने आत्माकी दर्शन योग्यता जिनमें ऐसे जे अदर्शनात्मक अज्ञानावृत शरीर तिनविषे प्रवेश करतेहैं । तथाच । × " इष्टापूर्तंमन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरञ्चाविशन्ति "। अरु जे कर्म कामना सहित किये जातेहैं सोई संसार का हेतु हैं । तथाच । * " आत्मैवेदमग्रआसीदेक एव सोऽकामत जाया मेस्यादथ प्रजायेयाथ वित्तंमेस्यादथ कर्मकूर्वी " । इत्यादि, अर्थ

× यह मुंडक उ० के प्रथम मुंडके द्वितीय खंडकी १० श्रुति ॥

* बृ० उ० के अध्याय १ के ब्रा० में ।

यह जो प्रथम ब्रह्मा अकेला आपहोके आपको वैभववान् होनेके अर्थ स्त्री पुत्र वित्तादिकों की कामना करके कर्मकरने की इच्छा करता भया। ताते सकाम कर्म संसारप्रवृत्ति का हेतु है अरु संसारही अदर्शनात्मक अनात्मअन्धकार रूप अज्ञान है। तिस अनात्म अज्ञानमें प्रवेशहोय जिन कर्मोंसे सो कहिये अविद्या। ताते अविद्या जे सकाम अग्निहोत्रादि कर्म तिनका निरन्तर अनुष्ठान करनेवाले अविवेकी सो कामना के वशभये अपने आपको अन्धतममें प्राप्त करनेवाले आत्महत्यारे अज्ञानी सो प्रवेश करतेहैं॥ अरु जे पुरुष ८। विद्याबिषे ९। रतहैं १०। अर्थात् देवता ज्ञानकरके जे भेद उपासना करनेवाले जोकि वास्तवकरके देवताओंको अपनेसे अरु अपनेसे देवताओंको अन्य मानके उपासना करतेहैं। सो ११। सकाम कर्म करनेवालोंसेभी १२। अधिक १३। ऐसे १४। अन्धतममें १५ प्रवेशकरते हैं॥ अर्थात् जो वास्तवीक स्वरूपमें भेदमानके देवोपासना करनेवाले भेदी उपासक हैं तिनको वेद भगवान् ने पशु करके प्रतिपादन किया है। तथाच। † "अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशु परेव ं देवानाम्"। ताते विद्या शब्दकरकेजे भेद उपासना तिसके कर्त्ता जे भेदी उपासक कनिष्ठ अधिकारी हैं सो अत्यन्त अदर्शनात्म अज्ञानावृत शरीरोंको प्राप्तहोते हैं॥ अथवा जे पुरुष लोकदृष्टिमात्र विद्या जेब्रह्मविद्या तिसबिषे रत भासतेहैंअरु कथन भी उसहीका करते हैं परन्तु आत्मअभ्यास से रहित अन्तःकरणमें नानाप्रकारकी विषयवासनाको चोरोंवत् छिपाय अन्तरमेंलेरहे हैं अरु आपको ज्ञानवान् अकर्त्ता मानके इस असत्यज्ञानके आश्रय विहित अग्निहोत्रादि कर्म जोकि अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञान का साधन हैं तिसका त्याग करते हैं अरु निषिद्ध जे पान मैथुनादिकर्म तिसबिषे अहर्निश प्रवृत्त रहते हैं। ऐसे जे अन्तरसे शिश्नोदरपरायण अत्यन्त अविवेकी बाह्य मुद्रासे ज्ञान बिषे रत

† बृ० उ० के अ० १ के १० अनु०॥

भासनेवाले पुरुष हैं सो स्वर्गादि सर्व उत्तम लोकोंसे भ्रष्ट हो
अत्यन्त करके अदर्शनात्मक अन्धतम केवल अज्ञानावृत्त वृ
पाषाणादि किंवा श्वान शूकर कीट पतंग मशकादि शरीररूप
लोकबिषे प्रवेश करते हैं । तथाच । *"अथ य इह कपूयचरण
अभ्यासो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं
वा चाण्डालयोनिं वा ॥ अथैतयोः पथार्न कतरेण च न तानि
मानि क्षुद्राण्यसकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्व
इति ॥ तथाच † "कुशला ब्रह्मवार्त्तायां वृत्तिहीनाचयेनराः ।
स तत्पदमाप्नोति पुनरायांतियांतिच " ॥ ९ ॥

तात्पर्य ॥

पूर्व तृतीय मंत्र करके जे आत्महत्यारे कहे हैं सो इस नवम
मंत्र करके विद्या अविद्याद्वारा दो प्रकारके कहके तिनके अ
अर्थात् कामुक कर्म करनेवाले अरु सर्वथा कर्मत्यागने वाले
अत्यन्त अज्ञानी इनदोनों कनिष्ठ अरु अधम अधिकारियों की दे
त्यागान्तर जो अन्धतम अरु अधिक अन्धतम लोककी प्राप्ति
रूपी गति प्राप्तहोती है सो प्रतिपादन किया है। सो इसकहने
जे मोक्षार्थी मुमुक्षु हैं तिनको वेद भगवान् दयाकरके सूचन
करते हैं जो अन्धतम अरु अधिक अन्धतम को प्राप्तकरने वाले
ऐसे जे कामुक अरु निषिद्ध कर्म्म तिनको अशेष त्यागके निष्काम
विहित कर्मोद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धता पूर्वक आत्मअध्यास
कर्त्तव्य योग्य है ॥

सम्बन्ध ॥

इसमंत्रबिषे कनिष्ठ अरु अधमाधिकारीको विद्या अरु अविद्या
करके अन्धतम अरु अधिक अन्धतमकी प्राप्ति प्रतिपादन किया
अब कहेवाक्यकी दृढताके अर्थ वृद्धोंकी साक्ष्य पूर्वक वेदभगवान्
आगे दशममंत्र को प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

---

*छां० उ० के ५ प्र० पंचाऽग्नि विद्याकी ७–८ वीं श्रुति ॥
† पंचदशी ग्रंथविषे ॥

अन्यदेवा हुर्विद्यया ऽन्यदेवा हुरविद्यया ॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

पदान्वयः ॥

विद्यया अन्यत् एव आहुः अविद्यया अन्यत् एव आहुः ये नः तत् विचचक्षिरे धीराणां इति शुश्रुम ॥

पदार्थ ॥

विद्याकरके [फल] अन्य ही कहते हैं [अरु] अविद्याकरके [फल] अन्य ही कहतेहैं जे हमको कर्म तथा ज्ञान कहतेहुए [तिन] धीरपुरुषोंका वचन ऐसे श्रवणकियाहै ॥

भावार्थमन्त्र दशवें का ॥

हे सौम्य विद्या करके १। फल अन्य २। ही ३। कहते हैं ४। अर्थात् विद्याका फल और ही है ऐसा कहते हैं। अरु अविद्या करके ५। फल अन्य ६। ही ७। कहते हैं ८। जो बुद्धिमान् पुरुष९। हमको१०। कर्मज्ञानका ११ उपदेशकरतेहुए १२ तिन धीरपुरुषोंका बचन१३। ऐसे१४। श्रवणकियाहै १५॥ अर्थात् जिन ज्येष्ठ श्रेष्ठ विद्वानोंकरके विद्या अविद्या अरु तिनके अधिकारी अरु तिनकेफलका विस्तार विवेचनहुआ है तिन धीरपुरुषों का वचन ऐसा श्रवणकियाहै जो विद्याका फल औरहै अरु अविद्याका फल औरहै १० ॥

तात्पर्य ॥

इसमंत्रबिषे विद्याकाफल और अरु अविद्याकाफल और कहा है। अर्थात् विद्याके जे उपासकहैं अरु अविद्याके जे उपासक हैं तिनदोनोंको उपासनाके अनुसार फलभिन्न२ दोदोप्रकारकेहैं तहां एक२प्रकारसे विद्या अरु अविद्याका फल अरु तिनके अधिकारी जोकि तृतीयमंत्रबिषे आत्महत्यारेकरके कनिष्ठ अरु अधमकहे हैं सो कहा। अर्थात् अविद्याकरके सकाम कर्म अरु तिनका फल अन्धतममें प्रवेश। अरु विद्याशब्दकरके भेदउपासना अथवा

असत्यज्ञान अरु तिसकाफल अत्यन्त अन्धतममें प्रवेशकहा इसप्रकार विद्या अविद्याशब्दका अर्थ तिनके फलाऽनुसार एक २ प्रकारका नवममंत्रकरके जे कहाहै सो बडेधीर बुद्धिमान् पुरु जे विद्या अविद्याके विभाग विवेचनकर्त्ता पूर्वभये हैं तिनके बचनोंद्वारा श्रवणकिया है ॥ अरु तैसेही धीरपुरुषों के बचनोंद्वार विद्या अविद्याके उपासकोंको तिनका फल औरप्रकारभी श्रवण कियाहै सो आगे एकादश ११ में मंत्रकरके कहेंगे । ताते यह जो दशममंत्र है सो देहली दीपकन्यायसे नवम अरु एकादश इन दोनों मंत्रों से सम्बन्ध रखता है। क्यों जो इस मंत्रमें विद्याका फल और अरु अविद्याका फल और कहाहै सो नवममंत्रसे कहे प्रमाण कनिष्ठ अरु अधम अधिकारियोंको तो एक २ निरूपण किया। अरु और एक २ प्रकारसे मध्यम अधिकारीके अर्थ विद्या अविद्याका स्वरूप अरु फल आगे एकादशवें मंत्रकरके प्रति-पादन करते हैं ॥

सम्बन्ध ॥

इसमंत्रमें विद्याकाफल अन्य अरु अविद्याका फल अन्यकहा है तहां कनिष्ठ अरु अधम अधिकारीको विद्या अविद्या अरु तिनकाफल अन्धतम अरु अधिक अन्धतमप्राप्ति नवममंत्रकरकेकहा। अब अन्य जे मध्यम अधिकारी द्वितीयमंत्रद्वारा कहे हैं तिनकी विद्या अविद्याका स्वरूप अरु तिनकाफल अथवा समुच्चयका फल आगे एकादशवें मंत्रकरके प्रतिपादन करतेहैं ॥

विद्यांऽचाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ॥ अ-
विद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ११ ॥

पदान्वयः ॥

तत् उभयं विद्यां च अविद्यां च यः सह वेद अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतं अश्नुते ११ ॥

पदार्थ ॥

सो दोनोंको विद्या पुनः [तिसकाफल] अविद्या पुनः (तिसकाफल] जेकोई एकसाध्य जानता है [सो]अविद्याद्वारा मृत्युको तरके विद्याद्वारा अमृतको प्राप्तहोताहै ॥

भावार्थमंत्रग्यारहवेंका ॥

हेसौम्य जे द्वितीयमंत्र से आत्मअध्यासमें असमर्थ मध्यम अधिकारी सूचितकियेहैं । सो पुरुष१। दोनोंको२। अर्थात् विद्याको३। अरु४। तिसके फलको अरु। अविद्याको५। अरु६। तिसके फलको । अर्थात् विद्याकहिये देवताके स्वरूप आयतन प्रतिष्ठा आदिकोंके ज्ञानपूर्वक अहंअग्रे अभेदउपासना। अरु अविद्याकहिये अग्निहोत्रादि विहित निष्काम कर्म अरु इनदोनोंके फलको। जे कोई ७। एक पुरुषकरके अनुष्ठान योग्य ८। जानताहै ९। अर्थात् जे पुरुष कथितप्रकार की विद्या अविद्याको समुच्चय सेवनकरता है सो पुरुष। अविद्याद्वारा १० । मृत्युको ११ । तरके १२ । विद्याद्वारा १३। अमरभावको १४।प्राप्त होताहै १५॥ अर्थात् अग्निहोत्रादि विहित निष्काम कर्मरूपी अविद्या तिसके करने करके अकरण प्रत्यवायजन्य जे अशुभ योनिकी प्राप्तिरूप मृत्यु तिससे छूटके देवता के स्वरूपादिकोंके ज्ञानसहित जे अहं अग्रे उपासना तिस अभेदउपासनारूपी विद्याकरके देवताकेसाथ अभेदभावकी प्राप्तरूपी जे अमरत्वभाव तिसको प्राप्तहोताहै ११॥

तात्पर्य ॥

इस मंत्रबिषे । " अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते " । अविद्याद्वारा मृत्युसों तरके विद्याद्वारा अमरभावको प्राप्त होताहै । ऐसा प्रतिपादनकियाहै तहां अविद्या जे अग्निहोत्रादि विहित कर्म तिनके निष्काम करनेसे अन्तःकरणकी मलिनतारूपी मृत्युसों छूटके विद्या जे ब्रह्मविद्या तिसकरके अमरभाव जो मोक्ष तिसकी प्राप्ति होतीहै । ऐसा भी अर्थ ठीक है । परन्तु इस स्थानबिषे सोई अर्थ यथार्थ है जो ऊपर व्याख्या किया

है क्योंकि अष्टादशवें मंत्रबिषे अग्निसे मार्ग याचना कही है सो अग्निकी विद्याद्वारा उपासकके अर्थ है । अरु जे ब्रह्मविद्या-द्वारा ब्रह्मआत्मा के अभेद उपासक ज्ञानी सो मार्ग से रहित है क्यों जो ज्ञानी के प्राण अन्त समय देह से उत्क्रमण न होके । * " तत्रैवसमवलीयन्ते " । जहां है तहांही अपने अधि-ष्ठानबिषे लीन होताहै । ताते यहां विद्या अविद्या शब्दका अर्थ जो प्रथम कहा है सोई यथार्थ है तिसको पुनःकहते हैं । हे सौम्य जे पुरुष अग्निकी विद्या के ज्ञानसे रहित केवल अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं सो देहत्यागके अनन्तर पितृलोकमें अपने कर्मों के फल भोगके पुनः ब्राह्मणादि वर्णत्रयीमें से कहीं भी अपने कर्मानुसार उत्पन्नहोय पुनः कर्मही करतेहैं । † " कर्मणा पितृ-लोकः " । ताते अविद्याजे अग्निहोत्रादि कर्म तिसकरके अकरण प्रत्यवायजन्य जे अशुभ योनियोंकी प्राप्तिरूप मृत्यु तिससे छूटते हैं । अरु विद्या जे पंचाग्नि वैश्वानर तृणाचिकेत आदि अग्नि-विद्या अथवा दहरादि विद्या तिन विद्याद्वारा देवताओं के स्वरू-पादिकोंके ज्ञानपूर्वक जे अहं अग्रे अभेद उपासना सो विद्या तिस विद्याकरके ब्रह्मलोक किंवा अग्नि आदि देव भावकी प्राप्ति । × ।" विद्ययादेवलोकः "। सोई अमरत्व की प्राप्तिहै । ताते अभि-प्राय यह है कि जे कोई पुरुष अग्नि आदि विद्याके ज्ञानपूर्वक अहं अग्रे उपासना करतसन्ते अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं सो पुरुष विहित कर्मद्वारा अकरण प्रत्यवायरूप मृत्युसों छूटके अग्नि आदिकोंकी विद्याद्वारा समष्टिदेव भावको प्राप्त होते हैं । ताते इसमंत्रद्वारा विद्या अविद्याकरके कर्मउपासना के समुच्चय सेवनकरनेवाले मध्यम अधिकारीको जो फल प्राप्त होताहै सो कहा अरु इस समुच्चय के आवान्तर विद्या अविद्या का स्वरूप अरु तिनका फल पृथक् २ भी सूचित किया है ॥ ॐ तत्सत् ॥

*—† छान्दोग्य उपनिषद् विषे ॥ × बृ० उपनिषद् विषे ॥

सम्बन्ध ॥

इस ११ ग्यारहवें मंत्रमें अरु ९ नवममंत्रमें विद्या अरु अविद्या का स्वरूप पृथक् २ प्रतिपादन किया है सो अधिकारी अरु फल वाक्यके भेद से किया है । तैसेही आगे बारहवें मंत्र से चौदहवें मंत्र पर्यन्त तीन मंत्रकरके संभूति अरु असंभूतिकी उपासना भी अधिकारी अरु फलवाद के भेदसे पृथक् २ प्रकार से प्रतिपादनकरेंगे तहां प्रथम कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी जे तृतीय मंत्रकरके सूचित किये हैं तिनको आदि कार्य कारण जे संभूति अरु असंभूति तिनकी उपासनासे जो गति प्राप्त होतीहै सो वेद भगवान् आगे बारहवें मंत्रकरके प्रतिपादनकरते हैं ॥

अ॒न्धन्तमः॒ प्रवि॑शन्ति॒ ये॑ऽसम्भू॑ति॒मुपास॑ते । ततो॒ भूय॑ इव॒ ते तमो॒ य उ॒ सम्भू॒त्याँ र॒ताः १२ ॥

पदान्वयः ॥

ये असंभूतिम् उपासते [ते] अंधं तमः प्रविशन्ति ये उ संभूत्याम् रताः ते ततः भूय इव तमः [प्रविशन्ति]

पदार्थ ॥

जे असंभूति को उपासते हैं [सो] अदर्शनात्मक अज्ञानप्रति प्रवेशकरते हैं [अरु] जे कोई संभूति बिषे रत हैं सो तिससेभी अधिक ऐसे तममें [प्रवेश करते हैं] ॥

भावार्थ मंत्रबारहवेंका ॥

हे सौम्य जो पुरुष १। असंभूति की २। उपासना करतेहैं ३। अर्थात् संभव कहिये उत्पत्ति है जिस कार्य की सो संभूति तिस कार्य रूपसे जे अन्य कारणरूप सो कहिये असंभूति जिसको प्रकृति अव्याकृत माया आदि नामसे कहते हैं सो काम कर्मादिकोंको उपजावनेवाली अन्धतम अविद्या तिसकी जो उपासना करतेहैं सो पुरुषतारूपही । अदर्शनात्मक ४। अज्ञानअन्धकारबिषे ५। प्रवेश करते हैं ६। अर्थात् वारंवार कारणभाव को

ही प्राप्त होते हैं क्योंकि अविद्या का कार्य कामना तिसको अपने बिषे लेके सकाम कर्मोंकाही अनुष्ठानकरते हैं सो अदर्शनात्मक अज्ञानरूप संसार में प्रवेश करते हैं ताते अपने बिषे नाना प्रकारों के शरीर उपजावने का कारण आपही होते हैं ॥ अरु जे ७। कोई पुरुष ८। संभूति बिषे ६। रत हैं १०। सो ११। तिससेभी १२। अधिक १३। ऐसे १४। तम में १५॥ प्रवेश करते हैं अर्थात् जे कोई अत्यन्त अविवेकी सकाम पुरुष हैं सो संभव है जिसका ऐसा जे आदि कार्यरूप हिरण्यगर्भ सो कहिये संभूति तिसकी जे सकाम उपासना करते हैं सो अधिकतर अदर्शनात्मक अज्ञान अन्धकार बिषे प्रवेश करते हैं। अर्थात् कार्य की कार्यभाव से जे उपासना तिसकरके जडात्मक कार्यभावकोही प्राप्त होते हैं। अर्थात् प्रकृतिका कार्य हिरण्यगर्भ तिसका कार्य अणिमादि ऐश्वर्य्य तिस ऐश्वर्य्य की कामना से किया जे कार्य हिरण्यगर्भ की उपासना तिसकरके कार्यरूप जे रत्नादि जड़ ऐश्वर्य तिस भावको प्राप्त होतेहैं ॥ अथवा हे सौम्य नास्तिकवादी आत्माको असंभूतिमानके कहते हैं कि असंभव मृतक का पुनः संभवनहीं अर्थात् शरीरके नाशहोतेही आत्माका नाश होताहै पुनः आत्मा कोई रहतानहीं कि जिसका पुनः संभव होय ताते आत्मा असंभूति है ऐसा निश्चय करते हैं हे सौम्य सो पुरुष अत्यन्त अन्ध तम जे श्वान शूकरादि शरीर रूपी नरक तिसको प्राप्त होते हैं। अरु संभव [उत्पत्ति] है जिसकी ऐसा जो शरीर सो संभूति तिस संभूती नामक शरीरको आत्मामानके कहते हैं कि यह जो दृश्यमान् शरीर है सोई आत्माहै हेसौम्य ऐसे जे देहात्मवादी अधमाधिकारी विरोचन की सम्प्रदायवाले चारवाकी सो देहत्याग के अनन्तर महाअन्धतम वृक्ष पाषाणादि जड़भाव कोही वारंवार प्राप्त होते हैं १२॥

तात्पर्य॥

जे कि तृतीयमंत्र में कनिष्ठ अरु अधमअधिकारी सकाम

कर्म अरु अशुभकर्म करनेवाले कहे हैं तिनके अर्थ कर्मानुसार अज्ञानावृत असुरलोकरूपी फल की प्राप्तिकहा। सो इसकहने से वेदभगवान् ने सूचना किया है कि जो सकाम अरु निषिद्ध कर्म हैं सो मध्यमाधिकारी मुमुक्षु को कर्त्तव्य नहीं अरु उत्तमाधिकारी मुमुक्षु पुरुषों को तो इन कर्मों का स्मरणमात्र भी कर्त्तव्य नहीं क्योंकि ये अनर्थ के हेतु हैं। अरु यही अर्थ पुनः वेद भगवान् ने नवम मंत्र करके प्रतिपादन किया है कि जिससे मुमुक्षु पुरुष भूल करके भी विद्या अविद्यारूप कामुक निषिद्ध कर्म अरु भेद भावनारूप उपासना तिनके समीप भी न जाय। अरु सोई अर्थ पुनः इस बारहवें मंत्र करके मुमुक्षु के अर्थ सूचनाकिया कि संभूति अरु असंभूति अर्थात् कार्य अरु कारण जे हिरण्यगर्भ अरु आदि प्रकृति तिनकी उपासना भी सकाम अरु भेदभाव से कर्त्तव्य नहीं क्योंकि सकाम कर्म अरु भेदभाव उपासना तिनके जे फलहैं सो सर्व नाशवान् जड हैं ताते सोई अदर्शनात्मक अन्धतम हैं ताते आदि प्रकृति जे सर्व देवादिकों का आदिकारण कि जिसकी उपासना से त्रैलोक्य की सर्व विभूति प्राप्त होती है तिसकी उपासनाभी सकामतासे मुमुक्षुको सर्वथा कर्त्तव्य नहीं। अरु जे कोई प्रकृतिआदि देवताओंकी सकाम उपासना करते हैं सो अन्त में अन्धतमको प्राप्त होतेहैं॥ ताते वेद भगवान् ने इस मंत्रसे मुमुक्षु को केवल काम्य कर्म अरु भेदभावना आदि अशुभ आचरणों से हटावने के अर्थ कामुककर्म अरु भेद उपासना की निंदा किया है। अरु तृतीय नवम द्वादश इन मंत्रोंसे तृवाक्यता करके आग्रह सहित वेदने कामुक कर्म अरु भेद उपासना तिसका फल अन्धतम असुरलोक प्राप्ति कहके तिनके कर्त्ताको आत्महत्यारे सूचितकिये कि जिससे मुमुक्षु आदि विवेकी पुरुष सकाम कर्म अरु भेदभावना के सम्मुख न होय॥ अरु जे अविवेकी पुरुष अपनी रक्षा में असमर्थ कामुक निषिद्ध कर्म अरु भेद भावनाके कर्त्ता आत्म-

हत्यारे हैं तिनको परिणाममें श्वान शूकर वृक्ष पाषाणादि नीच गतिकी प्राप्ति देखाय वेद भगवान् ने कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी का प्रकरण समाप्त किया ॥

सम्बन्ध ॥

इस मंत्र बिषे असंभूति अरु संभूति शब्द करके मूलप्रकृति आदि कारण अरु हिरण्यगर्भ आदि कार्य जे जगतरूपी वृक्षका आदि बीज अरु आदि अंकुर है सो कहा अरु उनकी भी सकाम अरु भेदभावउपासना से अन्धतमादि प्राप्ति देखाय मुमुक्षु को कामना अरु भेदभावना से हटाया । अरु कनिष्ठ अधमाधिकारी का प्रकरण समाप्त किया ॥ अब आगे तेरहवें मंत्रमें संभूति की उपासना का फल अन्य अरु असंभूति की उपासना का फल अन्य अर्थात् दो प्रकारका है तिनको वृद्धोंकी साक्ष्यपूर्वक देहली दीपक न्यायवत् पूर्वोत्तर मंत्रसे सम्बन्ध करते तेरहवें मंत्रको प्रारंभ करते हैं ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे १३ ॥

पदान्वयः ॥

संभवात् अन्यत् एव आहुः असंभवात् अन्यत् आहुः ये नः तत् विचचक्षिरे तेषां धीराणां इति शुश्रुम १३ ॥

पदार्थ ॥

संभूतिकरके [फल] अन्य ऐसा कहते [अरु] असंभूतिकरके [फल] अन्य कहते जे हमको संभूतिअसंभूतिफल कहतेहुए [तिन] धीरपुरुषोंका [बचन] ऐसे श्रवणकियाहै ॥

भावार्थ मंत्र तेरहवेंका ॥

हे सौम्य । संभूति की उपासना से१। फल और है २। निश्चय ३। कहते हैं ४। अरु असंभूति की उपासनासे ५। फल औरहै ६। ऐसाकहते हैं७। अर्थात् संभूतिकी उपासना का फल औरहै अरु

असंभूतिकी उपासनाका फल और है निश्चय से ऐसा कहते हुए। जे ८। हमको ९। उस संभूति असंभूति अरु तिनके फलादिकोंका १०। उपदेश करतेभये ११। तिन धीरपुरुषोंका बचन १२। इसप्रकार १३ श्रवणकियाहै १४॥ अर्थात् जिन विद्वान् वृद्धोंकरके उन संभूति असंभूतिका स्वरूप उपासना अधिकारी फल आदिकों का विस्तार विवेचन कियागया है तिन धीरपुरुषोंका बचन इतना इसप्रकार श्रवणकियाहै १३॥

तात्पर्य॥

इसमंत्रविषे संभूतिकी उपासनाका फल और असंभूति की उपासनाका फल और है ऐसा प्रतिप दन कियाहै। अर्थात् संभूति अरु असंभूतिके उपासकोंको फल भिन्न२ दो२ प्रकारके हैं ऐसा निश्चय कहाहै तहां जे कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी सकाम उपासकहैं तिनको संभूति असंभूतिकी उपासनाका फल अन्धतम अरु अधिक अन्धतमकी प्राप्तिहै ऐसा एकप्रकारसे बारहवेंमंत्रकरके प्रतिपादनकियाहै॥ अरु दूसरीप्रकारसे मध्यम अधिकारी जे आत्मअध्यासमें असमर्थहुए संसारके क्लेशोंकी निवृत्तिकेअर्थ निष्कामतासे संभूति असंभूतिकी उपासनाकरनेवाले हैं तिनको उपासनाके अनुसार मृत्युसेछूटना अरु अमरत्वप्राप्तिरूपफिल सो आगे चौदहवें मंत्रसे प्रतिपादनकरेंगे। ताते संभूति असंभूतिकी उपासनाका फल सकामता निष्कामताके आश्रय भिन्न २ होताहै इसप्रकारका निश्चयपूर्वक बड़े धीर विद्वान् वृद्धपुरुषोंका बचन श्रवणकियाहै। हेसौम्य इसप्रकार यह विद्या एकके समीपसे दूसरेको प्राप्त होतीहै। यह जो १३ तेरहवां मंत्र है सो देहली दीपकन्यायवत् बारहवें अरु चौदहवें इन दोनोंमंत्रों से सम्बन्धकरताहै तहां एकप्रकारसे संभूति असंभूतिकी उपासनाका फल कनिष्ठ अधमाधिकारीके अर्थ १२ वें मंत्रमें कहा है अरु दूसरी प्रकारसे मध्यम अधिकारीके अर्थ १४ वें मंत्रसेप्रतिपादन करतेहैं॥

सम्बन्धमन्त्र तेरहवेंका ॥

इस मन्त्र करके सम्भूति असंभूति की उपासना के फल भिन्न २ दो२ प्रकार से सूचना किये हैं तहां एक प्रकार से १२ वें मंत्र से कहके द्वितीय प्रकार से कहने के अर्थ १४ वें मंत्र का प्रारम्भ करते हैं ॥

सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयꣳसह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥ १४ ॥

पदान्वयः ॥

यः तत् उभयं सम्भूतिं च विनाशं च सह वेद [सः] विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्या अमृतं अश्नुते ॥

पदार्थ ॥

जोपुरुष सो दोनों असंभूति पुनः संभूति को एक जानते हैं [सो] संभूतिकरके मृत्युको तरके असंभूतिकरके अमृतको प्राप्त होतेहैं ॥

भावार्थ मंत्र चौदहवेंका ॥

हे सौम्य जे पुरुष द्वितीय मंत्रकरके कहे आत्म अध्यास में असमर्थ मध्यमाधिकारी १। सो पुरुष २। दोनों को ३। अर्थात् संभूतिशब्द करके * असंभूतिको ४।अरु ५ विनाश शब्द करके संभूति को ६-७ । अर्थात् असंभूति सो आदि कारण प्रकृति अरु विनाश सो संभूति आदिकार्य हिरण्यगर्भ इन दोनों को। एक करके ८। जानता है ९। अर्थात् एकही पुरुष असंभूति अरु संभूतिको अरु तिनके फलको एक जानके निष्कामतासे दोनों का समुच्चय सेवन करता है सो पुरुष । विनाशधर्मी जे कार्य संभूति हिरण्यगर्भ तिसकी उपासना से १०।अनैश्वर्यरूपी मृत्यु को ११। तरके १२।पुनः असंभूति जे आदिकारण प्रकृति तिस

---

* श्रीशंकराचार्य ने सम्भूतिका अर्थ असंभूति अरु विनाशका अर्थ संभूति किया है ॥

की उपासना से १३। अमृत को १४। अर्थात् प्रकृतिलय लक्षण रूपको प्राप्तहोता है १५। १४॥

तात्पर्य ॥

इसमंत्र बिषे।"विनाशेन मृत्युंतीर्त्वासंभूत्याऽमृतमश्नुते"। ऐसा प्रतिपादन किया है तहां विनाशधर्म हैं जिसका ऐसा जे संभूतिरूप कार्य्यब्रह्म हिरण्यगर्भ सर्वसूक्ष्म शरीरों की समष्टता परिणाममें प्रकृतिबिषे लय होनहार ताते विनाशि तिस हिरण्यगर्भकी उपासनासे अनैश्वर्यरूपी मृत्युसों तरके। अर्थात् हिरण्य गर्भकी उपासना से अणिमादि ऐश्वर्य्यरूपी फलकी प्राप्ति है सो उपासनाका असाधारण फलहै सो हिरण्यगर्भके निष्काम उपासक पावतेहैं। तिसकी प्राप्तिसे दारिद्र आदि अनैश्वर्यरूपी मृत्युसे तरजातेहैं॥ अरु असंभूति कहिये नहींहै संभव "उत्पत्ति" जिसका ऐसी जे संभव से रहित आदि कारण प्रकृति जो कि चैतन्य परमात्मा की सत्ता पाय सूक्ष्म स्थूलादि सर्व ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न करनेवाली तिसकी जे निष्काम उपासना करतेहैं सो परिणाममें देहत्यागान्तर प्रकृतिलयलक्षणरूप अमृतको प्राप्तहोतेहैं। अर्थात् वो पुरुष पुनः कार्य भावको प्राप्त नहीं होते सोई उनको अमरत्व प्राप्ति है। एतदर्थं इस मंत्रबिषे विनाशशब्द करके संभूति आदि कार्य हिरण्यगर्भ को कहा अरु असंभूति शब्द करके अव्याकृत आदिकारणको कहा। इन दोनों की समुच्चय उपासना करने वाले मध्यम अधिकारी तिनको जो फल प्राप्त होताहै सो कहा। अरु इस समुच्चय के अवान्तर संभूति असंभूति का स्वरूप अरु तिनकी उपासना का फल पृथक् भी २ सूचित किया। अरु १२ में मंत्रसे १४ में मंत्र पर्यन्त संभूति असंभूति का स्वरूप अरु तिनकी उपासना का फल पृथक् २ सूचनाकिया। है तहां १२ में मंत्रमें सकाम भिन्न भावसे उपासनाका फल कनिष्ठ अधमाधिकारी के अर्थ अन्धतम अरु अधिकअन्धतम प्राप्ति कहा है। अरु इस १४ में मंत्र करके संभूति असंभूति की निष्काम उ-

भेद उपासना का फल मृत्युसे तरना अरु अमरभाव की प्राप्ति प्रदिपादन करके मध्यम अधिकारी की उपासना का प्रसंग वेद भगवान् ने यहां समाप्त किया । इस उत्तरार्ध में नवम से चतुर्दशमें मंत्र पर्यन्त मध्यम अरु कनिष्ठ अधमाधिकरी की उपासनाका प्रसंग प्रतिपादन कियाहै तहां कनिष्ठ अधमाधिकारी को कामुक अरु निषिद्ध कर्मों का फल विद्या अविद्याद्वारा अन्धतम अरु अधिक अन्धतम की प्राप्ति नवममंत्रकरके कहा अरु उनहीं के अर्थ संभूति असंभूति की उपासना का फलभी अन्धतम अरु अधिक अन्धतमही बारहमें मंत्र करके प्रतिपादन किया । अरु मध्यम अधिकारी को निःकाम विहित सज्ञात कर्मकाफलविद्या अविद्याद्वारा मृत्युसेतरना अरु अमरत्व यह एकादशवें मंत्रकरके प्रतिपादन किया । अरु उनहीं के अर्थ निष्काम सज्ञात संभूति असंभूतिकी अभेद उपासनाका फल मृत्युसे तरना अरु अमरत्व प्राप्ति चतुर्दशवें मंत्र करके प्रतिपादन किया । अरु दशम त्रयोदश इनदोनों मंत्रोंको मध्यमें वृद्धोंके वाक्योंके सम्बन्धार्थ प्रतिपादन किया । ताते नवम से चतुर्दशवें मंत्र पर्यन्त कनिष्ठ अधमाधिकारी अरुमध्यमाधिकारी का प्रसंग वेद भगवान् ने प्रतिपादन किया ॥ अब एकादशवें मंत्रमें कहाहै कि ।"विद्ययाऽमृतमश्नुते"। विद्या करके अमरभाव को प्राप्त होतेहैं सो कौन २ विद्याकरके कौन २ उपासनाद्वारा कौन २ अमरभाव की प्राप्ति मध्यमाधिकारी को प्राप्त होती है सो संक्षेपमात्र चार मंत्रसे प्रतिपादन करतसंते वेदभगवान् इसउपनिषद्को पूर्णकरतेहैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

सम्बन्ध ॥

इसमंत्रमें मध्यम अधिकारीको संभूति असंभूतिकी निष्काम अभेद सज्ञात उपासनाका फलमृत्युसे तरना अरु अमर भावकी प्राप्ति निरूपण करके मध्यम अधिकारी उपासककी संभूति असंभूतिकी उपासनाद्वारा परिणामगतिका प्रकरण समाप्त किया ॥ अब आगे मध्यम अधिकारीकोही विद्याके आश्रय उपासनाद्वारा

अमरभावकी प्राप्ति जैसे होतीहै सो निरूपणकरैंगे। तहां प्रथम सूर्यभगवान्द्वारा जे सत्यपरमात्माके उपासकहैं तिनकी अपने उपास्य देवसे मार्गयाचना पंचदशमें मंत्रकरके वेदभगवान् प्रतिपादनकरतेहैं॥ ॐतत्सत्॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये १५॥

पदान्वयः॥

हेपूषन् सत्यस्य मुखं हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितं तत् त्वं सत्यधर्माय दृष्टये अपावृणु १५॥

पदार्थ॥

हेपूषः सूर्य सत्य परमात्माका द्वार तेजोमय पात्रकरके आच्छादितहै तिसको तुम सत्यधर्मामुझको दर्शनकेअर्थ खोलदेयो १५॥

भावार्थमंत्रपन्द्रहवेंका॥

हेसौम्य जेकोई एकपुरुष सूर्यभगवान्द्वारा प्रत्यगात्माके उपासकहैं सो अपनेको अमृतत्वप्राप्तिके अर्थ अपने उपास्य सूर्यभगवान्से परमात्माके दर्शनार्थ अभिलाषाकरतसंते प्रार्थनाकरैहैं कि॥ हे जगत्के पोषणकर्त्ता सूर्य १। तुम्हारे मंडलबिषे जे सत्यपरमात्माहै तिसका २। दर्शनद्वार ३। सो तुम्हारे तेजोमय ४। पात्रकरके ५। अर्थात् बिम्बकरके आच्छादित है ६। तिसको ७। तुम ८। सत्यधर्माको ९। अर्थात् सत्यस्वरूप जे तुम तिसकी यथोचित उपासना से सत्यधर्मा जो मैं तिस मुझको। देखने के अर्थ १०। खोलदेयो ११॥ अथवा हे सर्वके पोषणकर्त्ता सूर्य सत्यस्वरूप जे सर्वान्तर प्रत्यगात्मा तिसके दर्शनका जे मुखद्वार शुद्ध अन्तःकरण सो हिरण्मय पात्रकरके। अर्थात् सुवर्णादि द्रव्य विषयक लोभात्मक वृत्तिकरके। आच्छादितहै तिसको तुम मुझसत्यधर्माको दर्शनके अर्थ खोलदेयो। अर्थात् तुमहींको सत्यदेव जानके

तुमारीही स्तोत्र नमस्कारादि द्वारा यथोचित आराधना करनेवाला याते सत्यधर्मा ऐसा जो मैं तिसको अपने हृदयस्थ स्वयंप्रकाश अन्तर्यामी प्रत्यगात्मा तिसको साक्षात् आत्मत्वसे अनुभव करने के अर्थ उस लोभात्मकादि अशुभ वृत्तियोंको अनुग्रहकरके दूरकरो यही आपसे मेरी प्रार्थना है १५ ॥

तात्पर्य ॥

इस मंत्र से सूर्य भगवान्द्वारा प्रत्यगात्माकी उपासनावाले को वेदवाक्यसे सूर्यकी उपासना करतसन्ते अन्तरसे उपास्यदेव आगे अमरतत्व आत्मा की प्राप्त्यर्थ याचना कर्तव्य प्रतिपादन किया है । तैसेही अन्य देवताओं के उपासकों को भी जिसकी वेदोक्त उपासना होय तिस देवतासे अमृतत्व आत्माकीही प्राप्ति याचना कर्तव्यहै कि जिसकरके परिणाममें परमशान्त अमृतत्व की प्राप्तिहोय । यह सूचना किया ॥ और सर्व मनुष्यमात्रने भी कर्मउपासना करके स्वस्वरूप के सम्यक् बोधार्थही प्रार्थना कर्त्तव्यहै नतु विषयार्थ जोकि अन्धतम प्राप्तिकेहेतुहैं ॥

सम्बन्ध ॥

इस मंत्रबिषे सूर्यभगवान्की प्रत्यक् उपासना देखाय उपासकको अपनेआप आत्मा के सम्यक्बोधार्थही उपास्यदेवसे याचनाकर्त्तव्य सूचितकिया । अब अहंग्रग्रे उपासनाकीरीति से सूर्यकी प्रार्थनाकेअर्थ १६ में मंत्रका प्रारम्भ करते हैं ॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ
पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

पदान्वयः ॥

हेपूषन् हेएकर्षे हेयम हेसूर्य हेप्राजाप्रत्य रश्मीन् व्यूह तेजः समूह [एकीकुरु] यत् ते कल्याणतमं रूपं तत् ते पश्यामि यः असौपुरुषः सः असौ अहम् अस्मि ॥

पदार्थ ॥

हेपोषणकर्त्ता हेएकचलनेवाले हेसर्वकेसंयमनकर्त्ता हे सर्व रसकेस्वीकारकर्त्ता हेप्रजापतिकेपुत्र [सो] अपनीकिरणा दूरकरो तापके समूहको [एकत्रकरो] जो तुम्हारा कल्याणतम रूपहै तिसको तुम्हारेप्रसादसे मैंदेखताहौं जोयह [तुम्हारेबिषेपूर्ण] पुरुषहै सो ई यह मैं हौं ॥

भावार्थमंत्रसोलहवेंका ॥

हे सौम्य अब सूर्यभगवान्का जो अहंअग्रे उपासना करने वाला उपासक है सो सूर्यभगवान् से प्रार्थना करता है कि हे सर्वके पोषणकर्त्ता पूषा १ । हे एकचलनेवाले २ । अर्थात् आकाशमण्डलमें चलनेवाले जे ग्रहादिक तिनका अधिपति एक ताते "एकर्षे" । हे संयमनकर्त्ता ३ । अर्थात् सर्व प्राणधारियों को अपने२ नियममें रखनेवाला न्यायकर्त्ता यम । हे सूर्य ४ । अर्थात् सर्वरसजातिको अपनेबिषे अपनी किरणोंद्वारा स्वीकारकर्त्ता । हे प्रजापतिके पुत्र ५ । अर्थात् संवत्सरात्मक कालमूर्त्ति । अपनी किरणाओंको ६ । दूरकरो ७ । अरु अपने तापकतेजके ८ । समूहको ९ । एकत्रकरो कि जिसकरके । जोकि १० । तुम्हारा ११ । कल्याणतमरूप है १२–१३ । अर्थात् जो तुम्हारा अतिशोभन परमशान्त आनन्दघन निराकार कल्याणतमरूपहै । तिसको १४ । तुम्हारेप्रसाद करके १५ । मैं देखताहौं १६ । जो यह १७ । तुम्हारेबिषे चैतन्यपुरुष है १८ । सोई १९ । यह २० । अर्थात् जो यह प्राणबुद्ध्यादि संघात बिषे पूर्ण चैतन्य पुरुष है सो । हम् २१ । हैं २२ ॥ १६ ॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्रबिषे जे सूर्यभगवान्के विशेषण कहेहैं सोसर्व सूर्यस्थ चैतन्यपुरुषके कहेहैं । अरु जो सूर्यस्थ चैतन्यपुरुषहै सोई प्राणबुद्ध्यादि सर्वसंघातस्थ चैतन्यहै ताते जे विशेषण सूर्यस्थचैतन्यके हैं सोई प्राणस्थचैतन्यकेहैं तिसको श्रवणकरो । हे सौम्य जैसेचैतन्य

पुरुष सूर्य साथ मिलके वृष्टि आदि द्वारा जगत्‌का पोषण करता है तैसेही प्राण साथमिलके अन्नादिकों के रसद्वारा शरीर रूपी जगत्‌का पोषणकरता है । अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्य्य साथ मिल के सर्व ग्रहादिकों में श्रेष्ठ ताते एक आकाशमें चलनेवाला है। तैसे[1] ही[2] प्राणद्वारा मनादि सर्व में श्रेष्ठ ताते एक हृदयाकाश में विचरने वाला है। अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्यद्वारा सर्व ब्रह्माण्डको अपने २ नियममें राखतसंते सर्वका द्रष्टा साक्षी है। तैसेही प्राणद्वारा शरीररूपी ब्रह्माण्ड बिषे सर्व इन्द्रियादिकोंको अपने २ नियम में राखत संते सर्वका द्रष्टा साक्षी है। अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्यद्वारा सम्पूर्णरसजाति को अपने बिषे स्वीकार करताहै। तैसेही प्राणद्वारा सर्व अन्नादि रसोंका भोक्ताहै "अत्ता चराचरग्रहणात्" । "प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नंचतुर्विधम्" अरु जैसे चैतन्यपुरुष सूर्यद्वारा प्रजापतिका पुत्र कहावता है। तैसेही प्राणद्वारा मिलके लिंग अथवा वीर्य्यद्वारा पिताकापुत्र कहावता है। "आत्मावै जायतेपुत्रः"। ताते जो एकचैतन्य पुरुष सूर्य अरु प्राणरूपी उपाधि साथमिल के अधिदैव अरु अध्यात्मभाव को प्राप्तभया है सो चैतन्य वास्तव स्वरूप करके उभय स्थानोंमें एकही है इसही हेतुसे अहंग्रहे उपासनाकरनेवाला पुरुष अपने उपास्य सूर्य भगवान् से प्रार्थना करताहै कि हे सूर्य तुम अपनी किरणोंको दूरकरो अरुअपनेतापक तेजकोलयकरो किजिसकरके तुम्हारे वास्तविक परमकल्याणरूप चैतन्यपुरुषको अपनाआप आत्माकरके अनुभव करताहौं क्यों जो सोई चैतन्यपुरुष मैंहौं॥ अथवा हे सूर्यस्थपुरुष परमसूर्य इस शरीरमें जो प्राणरूपी सूर्य है तिसकी प्राणापानादि भेदसे नानाप्रकारकी प्रसरित वृत्तिरूपीकिरणा तिसको तुम अपने अनुग्रह करके हृदयाकाश बिषे एकत्रकरो कि जिसकी एकतासे प्राणहीबिषे प्रकाशित जे परम चैतन्य प्राणका भी प्राण तिसको साक्षात् अपना आप अनुभव करें क्योंकि वास्तवकरके श्रुतियों के तत्त्वमस्यादि प्रमाण से

अरु अपने आप यथार्थ अनुभवसे जो सम्पूर्ण चराचर जगत्में परिपूर्ण ताते पुरुष अथवा सर्व शरीररूपी पुरविषे किंवा पुरीतती नाडीविषे शयन करनेवाला ताते पुरुष। अर्थात् सर्व शरीरों बिषे सुषुप्तवत् निर्विकल्प अक्रिय परमशान्त है ताते सर्व शरीरों रूपी पुरविषे सोवनेवाला याते पुरुष। सोई सर्वव्यापी अक्रिय परमशान्त विज्ञानघन चैतन्यमैं हौं। हे सौम्य इसप्रकार सूर्यभगवान् द्वारा परमात्माका अहं अग्रे उपासना करनेवाला उपासक है सो उपास्य देव साथ अपने आप आत्मा की अभेदता को अनुभव करे है सो मध्यम अधिकारी कहे प्रकार उपासना करतसंते देह त्यागान्तर सूर्य्य मण्डलस्थ चैतन्य पुरुष साथ अभेद होय अमृतत्वको प्राप्तहोता है॥

सम्बन्ध॥

इस १६ में मंत्रबिषे अहंअग्रे उपासनावाले उपासकको उपास्यदेवसाथ अभेदतारूप अमृतत्वप्राप्ति देखाया॥ अब अहं अग्रे उपासनावाला उपासक अपने मरणकालमें मोक्षार्थ अपने उपास्यदेवसे प्रार्थना अरु मनको शिक्षाकरता है सो सत्रहवें मन्त्रकरके प्रतिपादन करतेहैं॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्। ॐ क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतोस्मर कृतꣳस्मर॥ १७॥

पदान्वयः॥

अथ वायुः अनिलम् अमृतम् इदं शरीरं भस्मांतं [भूयात्] हेक्रतो ॐ स्मर कृतं स्मर। क्रतोस्मर कृतꣳस्मर॥ १७॥

पदार्थ॥

अब इसकालमें प्राणवायु सूत्रात्माको [अरु] लिंगशरीर [अपने कारणको] यह शरीर अन्तभस्मभावको [प्राप्तहो] हेमने ॐकारको स्मरणकरो [अरु] कर्मको स्मरणकरो। द्विवचन प्रणवउपासनाके आदरार्थहै॥ १७॥

भावार्थमन्त्रसत्रहवेंका ॥

हे सौम्य पूर्वकहे प्रकार सूर्यभगवान्की अहंअग्रे उपासना वाले उपासक हैं सो यावत् आयुष्य तावत् समाहित चित्तहोके उपासना करते हैं सो जब उनका मरणकाल निकटआवता है तब अपने उपास्यदेव आगे प्रार्थना करता है कि हे सूर्यभगवान्। इसकालमें १ । प्राणवायु २ । अर्थात् इस उपस्थितकाल में मरणको प्राप्तहोता जो मैं तिस मेरेशरीरस्थ जो प्राणवायुहै सो। अनिल ३ । अर्थात् सर्वात्मावायु "सूत्रात्मा" तिसको प्राप्तहोय। अरु यह ४ । लिंगशरीर ५ । अर्थात् जो शरीर स्वप्न अरु परलोकके भोगोंका भोक्ता है सो अपने कारणभावको प्राप्तहोय । अरु यह शरीर ६ । अर्थात् यह दृश्यमान स्थूल अस्थिमांसमय शरीरनामसे जो सावयवपिण्ड है सो । अन्तमें भस्महोय ७। अर्थात् प्राणउत्क्रामणके पश्चात् आहुतिवत् अग्निमें हवनाकिया भस्महोय । हे सौम्य यहां पर्यन्त अर्थात् इसमन्त्रके पूर्वार्धपर्यंत सूर्यभगवान्की अहंअग्रे उपासनाके बलसे उपासक अपने उपास्यदेवकी प्रार्थनाकरके अमृतत्वको प्राप्तहोता है सो निरूपण किया ॥ अब आगे इसमन्त्रके उत्तरार्ध करके प्रणवके उपासक को अन्तकालमें प्रणवका स्मरणकरना सूचित करतेहैं। हे सौम्य जो पुरुष समाहितचित्तहोके शरीरावसानपर्यन्त त्रिमात्रिक प्रणवकी उपासना करता है सो पुरुष अपने देहावसानसमये अपने मनसे कहता है कि हे "क्रतः" संकल्पविकल्पकेकर्त्ता मन १ । ॐकारको २ । स्मरणकरो ३ । अर्थात् जिसकाल के साधनेकेअर्थ यावत् आयुष्य प्रणवकी उपासना कियाहै सो काल अब उपस्थित है ताते ॐकारको स्मरणकरो कि जिसके प्रभाव से ब्रह्मलोकमें ब्रह्माद्वारा त्रिमात्रिक प्रणवका उपदेशपाय अमृतत्वको प्राप्तहोवोगे ताते हे मन अब इसकालमें अपने कल्याणार्थ ॐकारका स्मरणकरो। अरु हेमन अपने किये कर्मकोस्मरणकरो ४-५। अर्थात् प्रणवोपासनाकरतसंते तू ने अग्निंहोत्रादि

विहित निष्कामकर्म जो कि निषिद्धकर्मको नाश करके अन्तः-करणकी शुद्धिद्वारा प्रणवोपासनामें सहायकभये हैं तिन कर्मों कोभी स्मरणकरो ॥ इसमंत्रमें स्मरणार्थ द्विवाक्यता है सो प्रणवोपासनाके आदरार्थ है ॥ १७ ॥

तात्पर्य ॥

इसमंत्रके पूर्वार्धमें कहाहै कि सूर्यकी अहंअग्रे उपासनाकरने-वालेहैं सो शरीरांतकालमें अपने उपास्यदेवकी प्रार्थनाकरतेहुए अमृतत्वको प्राप्तहोतेहैं तब उसकालमें उसके प्राण सूत्रात्मामें लयहोतेहैं। अरु अमर जे लिंगशरीरहैं अर्थात् बिना यथार्थ आत्म-ज्ञानके अन्य किसीप्रकारभी लिंगका नाशनहीं ताते लिंगको अ-मरकहतेहैं। तथाच " द्वेवावब्रह्मणोरूपे मूर्त्तंचैवामूर्त्तंच मर्त्यंचा-मृतंच " सो लिंग सूक्ष्म इन्द्रियादिकोंका संघातहै कि जिसकरके स्वप्नमें दर्शन श्रवणादिक्रियाहोतीहै तिसलिंगबिषे जे सूक्ष्मदेवां-शहैं सो अपने२ समष्टिदेवतासाथ एक होतेहैं सो देवांश अपने समष्टिदेवताबिषे गये फेरनहींआवते क्योंकि वो उपासक अपने उपास्यदेवगत चैतन्यपुरुषसाथ अभेदहोताहै ताते पुनः उसको स्थूलशरीररूपी क्षेत्रनहींहोता इसहीसे उसकी इन्द्रियां फेरआव-तीनहीं। अरु यह जो स्थूलशरीर है सो परिणाममें अग्निबिषे हवनकिया अपने कारणभावको प्राप्तहोताहै। हेसौम्य इसप्रकार जब बिद्वान् उपासककी स्थूल सूक्ष्म सर्वउपाधि अपने२ कारण भावको प्राप्तहोती है तब तिसबिषे उपपन्नथा जो चैतन्यपरमा-त्माका आभास जीव कि जिसको उपाधिकेसम्बन्धसे अल्पज्ञ-तादिसंज्ञा प्राप्तभईथी सो अपने उपास्यदेवगत सत्य चैतन्यपुरु-षरूपी बिम्ब कि जिसको अपनेआप आत्मत्वसे अनुभवकियाहै तिससाथ भेदसेरहित अभेद ऐक्यताको पावता है सोई विद्वान् उपासकको परमअमृतत्वकी प्राप्तिहै कि जिस प्राप्तिसे पुनःअ-विद्याजन्य दुःखमय नाशरूप उपाधिको प्राप्तहोतानहीं । ताते मध्यमअधिकारी इसप्रकार अहंअग्रे उपासनाकरके देहत्यागान्त-

र अमृतभावको प्राप्तहोय आवागमनसे रहितहोताहै ॥ अथवा जे सूत्रात्मा समष्टिप्राणके व्यष्टिप्राणद्वारा अहंअग्रे उपासनाकरने वाले उपासकहैं सो अपने देहत्यागान्तर अपने उपास्य देवसूत्र आत्माके साथ अभेदहोतेहैं सोई उन मध्यमाधिकारीको प्रवर्कादि प्राणविद्याद्वारा अमृतत्वकी प्राप्तिहै ॥ अरु इसमंत्रके उत्तरार्ध में प्रणवकी उपासनाकरनेवाले के अर्थ वा सर्वको अपने२ शरीर त्यागनेके समय ओंकारका स्मरणकरना द्विवाक्यताकरके वेदने कहा है तिसकरके प्रणवोपासनाकी श्रेष्ठतादेखाई है ताते सर्व पुरुषोंको अपने२ देहावसानसमये ॐकारका स्मरण अवश्यही कर्तव्ययोग्यहै ॥

सम्बन्ध ॥

इसमंत्र के पूर्वार्धि से सूर्य भगवान् अथवा सूत्रात्मा की अहं अग्रेउपासनाद्वारा अमृतत्वप्राप्तिप्रतिपादनकिया अरु उत्तरार्ध करके प्रणवकेस्मरणद्वारा अमृतत्वप्राप्ति प्रतिपादनकिया । अब आगे अग्निके उपासकको अमृतत्वप्राप्ति १८ वें मंत्रसे प्रतिपादनकरतसंते ग्रंथकी पूर्णताकरतेहैं ॥ इति सम्बन्धः ॥ ॐ तत्सत् ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

इति ईशावास्योपनिषद् । ॐ तत्सत् ॥

पदान्वयः ॥

हेदेव हेअग्ने विश्वानि वयुनानि विद्वान् अस्मान् राये सुपथा नय अस्मत् जुहुराणं एनः युयोधि ते भूयिष्ठां नमउक्तिं विधेम ॥ १८ ॥ इति पदान्वयः ॥ ॐ ॥

पदार्थ ॥

हे प्रकाशात्मकदेव हेअग्नि सर्व कर्मको जानतेहौ हमकर्मके र्ताओंको कर्मफलकेअर्थ शोभनमार्गसे प्राप्तकरो [अरु] हमों

कुटिलबचनात्मक पापेको विनाशकरो तुम्हारेअर्थ बहुतसे न-मस्कारवचन विधानकरतेहैं ॥ इति पदार्थ ॥ हरिः ॐ तत्सत्ब्रह्म ॥

भावार्थमंत्रअठारहवेंका ॥

हे सौम्य अब अग्निदेवतासे अमृतत्वप्राप्तिकेअर्थ उसका उपासक प्रार्थनाकरताहै। हे प्रकाशवान् देव १। हे अग्नि २। सम्पूर्ण ३। हमारेकर्मोंको ४। जानतेहो ५। तातेहमकर्मविशिष्टोंको ६। अर्थात् समाहितचित्तसे निरन्तर निष्काम विहितकर्मकरनेवाले हमकर्मीलोग तिनको। कर्मफलभोगनेकेअर्थ ७। शोभनमार्ग करके ८। प्राप्तकरो ९। अर्थात् दक्षिणमार्गवर्जित उत्तरायणमार्गसे प्राप्तकरो। अरु हमारे १०। कुटिलवचनात्मक ११। पापोंको १२। अर्थात् विहितकर्मकरतसंते अज्ञानवश असत्य किंवा व्यंगवचन जो कथनभयाहोय तो तज्जन्यपापोंको । विनाशकरो १३। कि जिसकरके हम अत्यन्त पवित्रहोयं अपनेइष्ट अमृतत्वको प्राप्तहोवें एतदर्थ इस शरीरावसानकालमें अशक्यताकरके हवनादि परिचर्यामें असमर्थ जे हम सो तुम्हारेअर्थ १४। बहुतसे १५। नमस्कारवचन १६। विधानकरतेपरिचर्याकरतेहैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ इति ईशावास्यउपनिषद्की भाषाटीका भावार्थ सम्पूर्णम् ॥

तात्पर्य ॥

"कुर्वन्नेवेहकर्माणि" इत्यादि। इसद्वितीयमंत्रकरके आत्मअभ्यासमें असमर्थ मध्यमअधिकारीको निष्काम विहित अग्निहोत्रादि कर्म कर्त्तव्यकहा क्यों जो उस मध्यमाधिकारीको अमृतत्वप्राप्तिकासाधन कर्मउपासनाहीहै तहां। विहितकर्मकरतसंते अकरणप्रत्यवायजन्य पापरूपी मृत्युसोंतरके सूर्यादिदेवता किंवा त्रिमात्रिकप्रणव की वेदवाक्यानुसार उपासनाकरताहै सो उपासकतिसउपसनारूपीविद्याकरके अमृतत्वको जिसप्रकारप्राप्तहोताहै सो १५ वें मंत्र से इस १८ वें मंत्र पर्यन्त निरूपण किया तहां इस १८ वें मंत्र से मध्यमाधिकारी अग्नि की विद्याद्वारा अंह अग्रे उपासना करतेहैंसो अन्तसमय अग्निकी प्रार्थनाकर शुद्ध

उत्तरायण देवयान मार्गद्वारा सत्यलोक को अथवा शुद्ध समष्टि अग्निभावको प्राप्त होते हैं । सोई अग्निकी विद्याकरके अमृतत्व प्राप्ति है । याते वेदवाक्यानुसार ज्ञातपूर्वक उपासना करनेवाले जे अग्नि के उपासकहैं सो " न स पुनरावर्त्तते "। जन्म मरणरूप संसारमें पुनः आवते नहीं । अर्थात् वो उपासक अपने उपास्य देवसाथ अभेद हुआ अमर अर्थात् देवत्वभाव को प्राप्त होय अन्यों करके उपासना करने योग्य होता है ॥ इति तात्पर्यार्थ समाप्तम् शुभम् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति ईशावास्योपनिषद् भाषाटीका सहित
समाप्तम् शुभम् ॥

॥ ॐ ॥
॥ ब्रह्मार्पण मस्तु ॥
॥ ॐ ॥

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥ पूर्णस्यपूर्ण मादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॐ ॥

॥ ॐ ॥

॥ सूचीपत्रम् ॥

॥ १ ॥ प्रथम मूलमन्त्र तिसके ऊपर पदच्छेद की रेखा ॥ अरु अन्वयांक ॥

॥ २ ॥ मूल के नीचे अन्वयके क्रम से मूलमन्त्रके पद ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६

॥ ३ ॥ अन्वय पदके नीचे तदनुसार भाषा में पदार्थ ॥

॥ चिह्नसूचना ॥

[ ] इस चिह्नान्तरमें शेष बिशेष के पद ॥

" " इस चिह्नान्तर में अन्य श्रुतियों के प्रमाण ॥

॥ विनय ॥

इस भाषाऽनुबादमें जो कुछ लेख अरु यन्त्रादि दोष होय तिनको सर्वपाठक जन क्षमाकरें ॥

मुंशीनवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने लखनऊ में छपी
मई सन् १८०१ ई० ॥

ॐम्

केनोपनिषद्

सामवेदीय तलवकार शाखीय की भाषा टीका

सरल मध्य देशी हिन्दी भाषामें

कोलाख्य नगर निवासी पञ्चोली यमुनाशंकर नागर
ब्राह्मणने पण्डितराजशास्त्री मिहिरचन्द्र जी की
सहायतासे अनुवाद कर प्रकाशित किया

सर्व्वलोकजनहितार्थ

बाजपेयि पं० रामरत्न के प्रबन्ध से

दूसरीवार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी

अगस्त सन् १८९१ ई०

ओ३म्

परमात्मनेनमः

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म

विज्ञापनम्

सर्व्वसत्यावलम्बी सज्जन विचारशील
पाठकजनों पर विदित हो

कि यह सामवेदकी तलवकार नाम्नी शाखा सम्बन्धि तलवकार वा केन नामा आत्मविज्ञानप्रकाशक उपनिषद्‌हैं 'तिसबिं 'ब्रह्मा,वा प्रजापतिने अपनेपुत्र वा शिष्य मुमुक्षुको आत्मविद्या उपदेश किया है, तिसके ४चार खण्डहैं तहाँ प्रथम खण्डमें शिष्यके प्रश्नानुसार प्रश्न शब्दानुरूपसे उत्तर उपदेश अरु आत्मा को अविषयत्वपूर्व्वक ब्रह्मत्व अरु तद्व्यतिरिक्त को ब्रह्मत्वका निराकरण उपदेश किया है। द्वितीय खण्ड में शिष्यकी सम्यक् परीक्षा के अर्थ शिष्यसे प्रश्न पूर्व्वक उपदेश किया है। तृतीय खण्डमें देवताओं के असत्य अहंकार निवारणार्थ सर्व्वशक्तिमान् परमात्मा का यक्ष [पूजनीय] रूपसे देवताओं का प्रत्यक्ष होना अरु स्वशक्ति तृणमें स्थापितकर तिसके द्वारा देवताओंका असत्य अभिमान दूरकरना अरु सर्व्वोत्तम उमानाम्नी ,ब्रह्म-विद्या, देवी रूपसे दर्शनाभिलाषी इन्द्रको साक्षात् प्रकट दर्शन दे ब्रह्मबोध करना, सो उपदेश कियाहै। चतुर्थखण्ड में ब्रह्म के साक्षात् दर्शन स्पर्शकी महिमा से ,अग्नि, वायु, इन्द्र, इनतीन देवताओं का सर्वमें श्रेष्ठत्व, अरु अधिदैव अध्यात्म उभयरीत्या ब्रह्मोपदेश अरु ब्रह्म प्राप्ति होनेकी योग्यताके अर्थ साधनोंकी सूचना प्रशंसा अरु फलवाद सहित समाप्ति उपदेश कियाहै॥ इसप्रकार इस उपनिषद् विषे निर्विशेष अरु सविशेष उभय रीति

से ब्रह्मोपदेश प्रकाशितहैं अरु इसके चारों खण्डोंमें ३४ मन्त्रहैं ॥ १ प्रथमखण्डमें ८ ॥-॥ २ द्वितीयखण्डमें ५ ॥ ३ तृतीयखण्डमें १२ ॥-॥ ४ चतुर्थ खण्डमें ९ ॥ इसप्रकार यह उभय रीतिसे साक्षात् ब्रह्मबोध उपदेशात्मक सर्व्वोत्तम ब्रह्मविद्या उपनिषद् है। तिसको तैसाही अनुभव करके, व्यवहार सत्ता, से सर्व्व आत्मनिष्ठों का सेवक मैं कोलाख्य नगर निवासी पञ्चोली यमुनाशंकर नाम नागर ब्राह्मणने अपने श्रीमहाराज गुरूकी कृपाबल अरु पण्डितराज श्रीशास्त्री मिहिरचन्द्रजीकीसहायतासे किञ्चित् श्रीशंकराचार्य्यजीके भाष्याश्रय अपनी अल्प बुद्ध्यनुसार इसकी भाषाटीकाकियाहै।तिसकेलेखकी अनुक्रमणिका निम्नलिखित है

अनुक्रमणिका

(१)—प्रथम मूल मन्त्र तिसपर पदच्छेद की रेखा अरु अन्वयांक। ४ । २ । ३ । । १ ।

(२)—मूल के नीचे क्रम से अन्वय के पद अरु ऊपर अन्वयांक। १ २ ३ ४ ५

(३)—अन्वय पद के नीचे क्रम से भाषा में अर्थ सहित अन्वयांक। १ २ ३ ४ ५

(४)—भाषामें भावार्थ सहित मूल पदान्वय अक्षरार्थ के— तिसके चिह्न

[ ]—इस चिह्नान्तर अन्वय पद अरुअक्षरार्थमें शेष विशेष के पद अरु भावार्थ में पदों के अर्थ।

" " इस चिह्नान्तरमें मूल मन्त्रके वाक्य

‹ › इस चिह्नान्तर वाक्यके क्रम पदसे

" " इस चिह्नान्तर में अन्य श्रुति आदिकों के प्रमाण वाक्य अरु तिसके अधोपरि

* ० ⁞ × + ❁

इत्यादि चिह्न हैं सो उन प्रमाण वाक्यों के स्थान बोधार्थ हैं अरुइन्हीं चिह्नोंको पृष्ठकी अन्तिमा पंक्ति के नीचे बनाय तिसके नाम स्थान अध्याय संख्या सूचित हैं ॥

इसप्रकार इस टीकाकी रचना भई है। तिसको अरु ईशावास्य उपनिषद् की टीकाको प्रथम श्रीमती ठकुरानी महताब कुँवरि रईस कोटिला परगनह फ़िरोज़ाबाद ज़िलअ आगरा ने मुद्रित कराय लोकोपकार में प्रकाशित किया। अब उन्हीं ग्रन्थों को शुद्ध कराय परमधार्मिक श्रीमान् मुन्शी नवलकिशोर जी साहब ने अपने श्री लक्ष्मणपुरी के महायन्त्रालय में मुद्रित कराय प्रकाशित कियाहै। अरु अवतार सिद्धिनामा ग्रन्थ, श्री रामगीता की टीका, जो इस टीकाकारकरके रचित है तिसको भी उक्त महाशय ने मुद्रित कराय प्रकाशित कियाहै सो अस्तु।

ॐम् ॥

शान्तिपाठ ॥

ॐमाप्यायन्तु ममांगानि वाक् प्राणं चक्षुः श्रोत्रमथो
बलमिन्द्रियाणि च सर्व्वाणि सर्व्वंब्रह्मोपनिषदमाह
ब्रह्म निराकुर्य्यान्मामाब्रह्म निराकरोदनिराकरण
मस्त्वनिराकरणं मे अस्तु तदात्मनि निरतेय उपनिषद्
सुधर्म्मास्तेमयिसन्तु ते मयिसंतु। ॐ शांतिः शांतिःशांतिः।

इति

ॐम्

सामशाखीयतलवकारकेनोपनिषद् ॥

ॐपरमात्मनेनमः ॥

अथ गुरुशिष्यके संवाद द्वारा इस केनउपनिषद्की भाषाटीका प्रारम्भकरतेहैं। तहांयहउपनिषद् प्रजापतिअरुउनकेशिष्य अथवा अन्य वेदाचार्य अरु उनके शिष्यके संवादद्वाराही है परन्तु मूलश्रुतिमें प्रश्नोत्तरकर्त्ता के नाम कहेनहीं परन्तु उपदेशात्मक वाक्य विना परस्परके संवादके बने नहीं एतदर्थ उपदेश सम्बन्धके लिये आचार्य्य अरु जिज्ञासुके संवादका सम्बन्ध भाष्यकाराचार्य्योंने प्रकट कियाहै तिस वेदाचार्य संवादको गुरु शिष्यके संवादद्वारा भाषाऽनुवाद करतेहैं ॥

प्रश्न ॥ शिष्यउवाच ।हेगुरो हेभगवन् यह जो मनआदि इन्द्रियां हैं तिनको जो कदापि विषयोंसे हटावते भी हैं तथापि वो बलात्कारसे अनिवारितहुए अपने२ विषयोंकी ओरही जाती हैं सो अपनी २ स्वतंत्रतासे जाती हैं अथवा किसी प्रेरककी प्रेरणा से सो आप कृपाकरके कहिये ॥

उत्तर ॥ श्रीगुरुरुवाच । हे शिष्य तेरे इस प्रश्नके ऊपर वेद का कहाहुआ कहतेहैं । सामवेदकी तलवकार शाखाका केननाम उपनिषद् है तिसबिषेभी प्रजापतिसे जिज्ञासुका यही प्रश्नहै कि जोतूने हमारेप्रतिकियाहै सोतिसका उत्तर जोप्रजापतिने कहाहै सो श्रवणकरो । हे शिष्य कोई एक वैराग्यवान् आत्मजिज्ञासुको आत्मज्ञान विषयक श्रद्धा उत्पन्नभई तब आचार्य प्रजापति अथवा अन्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठके समीप प्राप्तहोय प्रश्नकरताभया क्योंकि बिना आचार्यके उस महासूक्ष्म प्रत्यगात्मविषयक सम्यक् ज्ञान स्वबुद्धिकी कल्पना तर्कादिकोंसे होतीनहीं । तथाच ।

"नैषातर्केणमतिरापनेया,, एतदर्थ श्रुतिने नियम किया है कि "आचार्य्यवान् पुरुषोवेद ,, "आचार्य्याद्धैव विद्याविदिता साधिष्ठं प्रापदिति ,, "तद्विद्धिप्रणिपातेन,, इत्यादि श्रुतिस्मृतिके प्रमाणसे आचार्य्यद्वाराही आत्मज्ञानहोताहै अरु सम्यक् आत्मज्ञानसेही अशेष संसारकी निवृत्तिपूर्वक अजर अमर अभय अक्रिय शिव शान्त परमानन्द अपनेआपकी प्राप्ति सिद्धहै "नान्यःपन्था विमुक्तये,, ऐसा अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे निश्चयकरके श्रुतिकेही "तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभि गच्छेत समित्पाणिः श्रोत्रियम्ब्रह्मनिष्ठम्,, इस प्रेरणा लक्षणबाक्यके प्रमाणसे विधिवत् समिधादिद्रव्यले गुरुशरणजायके प्रश्नकरताभया। तब तिसको जो आचार्य ने उपदेश किया सोई अब तेरे अर्थ कहते हैं ॥

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति १ ॥

[पदान्वयः]

केन इषितं प्रेषितं मनः पतति केन युक्तः प्राणः प्रथमः प्रैति केन इषितां इमां वाचं वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं कः उ देवः युनक्ति १ ॥

[पदार्थ]

किसकरके इच्छाकियाहुआ [तथा] प्रेरितहुआ मन गिरताहै (अरु) किसकरके प्रेरितहुआ प्राण (जो) प्रथमहै (सो) प्रवृत्तहोताहै (अरु) किसकरके प्रेरित यह बाणी उच्चारणकरे है (अरु) चक्षु श्रोत्रको कौन सा देव प्रेरणा करेहै १ ॥

[भावार्थ]

जिज्ञासुरुवाच । "केनेषितं पतति प्रेषितं मनः,, { केन इषितं प्रेषितं मनः पतति } [किसकरके १ इच्छाकियाहुआ २ (तथा)प्रेरितहुआ ३ मन ४ । गिरताहै ५ ।] अर्थात् किसप्रेरक

करके इच्छाकियाहुआ तथा सत्ताकरके प्रेरितभया। जैसे सूर्यकी प्रकाशरूप सत्तापायके सर्व अपने २ व्यापारोंमें प्रवृत्त होते हैं तैसे। यह मन किसकी इच्छा अरु प्रेरणाकरके प्रेरितहुआ विषयों प्रति जाता है क्योंकि जिस विषय को अनिष्ट जानके यह मनहटता है तथापि पुनः अनिवार्य्य हुआ बलात्कार से उसही विषयकी ओर जाता है। जैसे स्वामीकी इच्छा अरु प्रेरणासे प्रेरित भृत्यबिनाही स्वइच्छाके युद्धादि क्रियामें प्रवृत्त होताहै तैसे॥ अरु हे गुरो मन जोहै सो विषयोंसे निवृत्त होत संतेभी अनिवार्य्यहुआ अपनी स्वतन्त्रताकरके विषयोंप्रति जाता है उसका पृथक् प्रेरक कोईनहीं जो इसका पृथक् प्रेरक निवारक होता तो यह निवारणकिया विषयोंप्रति न जाता, ताते "केनेषितं" इत्यादि प्रश्न बनता नहीं ॥ गुरुरुवाच ॥ हे शिष्य जो कदापि अपने विषयोंमें प्रवृत्ति निवृत्तिके अर्थ मन स्वतन्त्रहै तो किसीकोभी अनिष्टका चिन्तन बने नहीं परन्तु जिस विषयका फल अत्यन्त दुःखहै अरु तिसको मनजानताहै तथापि तिससे निवारण होत सन्तेभी उसही विषयकी ओर जाताहै सो किसी प्रेरककरके प्रेरितही जाताहै। ताते मनआदि अपने २ व्यापार बिषे स्वतन्त्र नहीं, यह सर्बकार्य कारणात्मक जड़हैं एतदर्थ इन सर्बका प्रेरक प्रकाशक सर्ब से पृथक् चैतन्य आत्मा है, ताते आचार्यसे जिज्ञासुका "केनेषितं" इत्यादि प्रश्न युक्तही है। अरु। "केनं प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः" [केन युक्तः प्राणः प्रथमः प्रैति] [किसकरके ६। प्रेरितहुआ ७। प्राण ८। जो प्रथम है ९। प्रवृत्तहोता है १०।] अर्थात् हे भगवन् किस प्रेरक करके प्रेरित यहप्राणवायु जो इस संघातमें प्रथम (मुख्य) है सोपांच किंवा भेदको पायसर्बक्रियामें प्रवृत्तहोताहै। अरु। "केनेषितां वाच मिमां वदन्ति" [केन इषितां इमां वाचं वदन्ति] [किस करके ११ प्रेरित १२। यह १३। वाणी १४। उच्चारण करे है १५] अर्थात् किस इच्छककरके प्रेरित यहवाणी जोशब्द लक्षण

रूपाहै तिसको लोक उच्चारणकरे हैं । यहांवाचा उपलक्षणकरके सर्व्वकर्मेन्द्रियों का ग्रहणहै जो किसकी इच्छाकरके प्रेरित यह सर्व कर्मेन्द्रियां अपने २ कार्य्यको करती हैं । अरु " चक्षुः श्रोत्रम् क उ देवो युनक्ति " । [चक्षुः श्रोत्रम् कः उ देवः युनक्ति] [चक्षु १६ । अरु श्रोत्रको १७ । कौन १८ । सा १९ । देव २० । प्रेरणाकरताहै २१ ।] अर्थात् चक्षु श्रोत्रको कौनसास्वयंप्रकाशदेव विषयोंप्रति प्रेरणा करेहै । यहां चक्षु श्रोत्र उपलक्षण करके सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंका ग्रहणहै, कि कौनसा चैतन्यदेव इन चक्षु आदि इन्द्रियोंको रूपादि विषयोंप्रति प्रेरणा करता है १ ॥

तात्पर्य यहहै कि अनात्मा अरु जडरूप इन मन प्राण इन्द्रियादि स्थूल सूक्ष्म सर्व संघातको सत्तादेके अपने २ व्यापारबिषे बरतावनेवाला प्रेरक इन सर्वके पृथक् महासूक्ष्म चैतन्य आत्मा सर्वान्तर होत सन्ते सर्वके धर्म्मसे रहित असंग सत्तारूप स्थित है, तिस अपने आप प्रत्यगात्माके सम्यक् बोधबिना अन्यउपाय निःशेष दुःख निवृत्तिका कोई नहीं, एतदर्थ मुमुक्षु पुरुषको ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्यको प्राप्तहोय सर्वके प्रेरक सर्व्वान्तर प्रत्यगात्माके बोधार्थ प्रश्नकर्त्तव्यहै । * " तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् " । इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे ॥ इसप्रकारजब जिज्ञासुने अपने आचार्य प्रजापतिसे प्रश्नकिया तबआचार्य्य प्रजापति उत्तरदेता हुआ ॥

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ
प्राणस्य प्राणः चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्या
स्माल्लोकादमृता भवन्ति २ ॥

[पदान्वयः]

यत् श्रोत्रस्य श्रोत्रं [यत्] मनसः मनः [यत्] वाचः ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषः चक्षुः अतिमुच्य धीराः अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृता भवन्ति २ ॥

* यहमुंडकउपनिषद्के द्वितीय मुंडककी १२ वीं श्रुति

[पदार्थ]

जो[1] श्रोत्र[2]का श्रोत्र[3] है [जो] मन[4]का मन[5] है [जो] वाक्[6]की भी[7] वाक्[8] है सो[9] ई[10] प्राण[11]का प्राण[12] है [सोई] चक्षु[13]का चक्षु[14] है भलीप्रकार[15] त्यागके धीरपुरुष[16] इस[17]लोक[18]से छूटके[19] अमर[20] होते[21] हैं २ ॥

[भावार्थ]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे शिष्य पूर्व कहेप्रकार जबजिज्ञासुने प्रजापतिके प्रतिप्रश्नकिया तब उसको उपदेशका अधिकारीजान प्रजापति कहतेहुए ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन तुमने जो प्रश्नकिया कि इस मन प्राण वाचा चक्षु श्रोत्रादिकोंका प्रकाशक प्रेरक देव कौनहै, सो । " श्रोत्रस्य[2] श्रोत्रं[3] । मनसो[4] मनो[5] यद्वाचो[6] । ह वाचं " । { यत्[1] श्रोत्रस्य[2] श्रोत्रं[3] [यत्] मनसः[4] मनः[5] [यत्] वाचः ह वाचं } [जो १ । श्रोत्रका २ । श्रोत्रहै ३ । जोमनका ४ । मनहै ५ । जोवाक्की ६ । भी ७ । वाक्है ८ ।] अर्थात् जोशब्द विषयके ग्रहणार्थ श्रोत्र इन्द्रियरूप करण सो श्रोत्र तिसश्रोत्र इन्द्रियद्वारा शब्दविषयका अनुभवकर्त्ता श्रोत्रस्थ अरुश्रोत्रसेभिन्न (घटाकाशवत्) प्रकाशक प्रेरकको श्रोत्रका श्रोत्रकरकेकहाहै । कुछ श्रोत्रइन्द्रियकीश्रोत्र इन्द्रियनहींकहाक्यों जोसर्व विशेष्यविशेषण सेरहितकेवलबोधरूपआत्मासोश्रोत्रादि सर्व्वान्तरस्वसत्तासेसर्व का अपनेअपने विषयप्रतिप्रेरकहै । तातेउसनिर्विशेष आत्माविषे श्रोत्रादि विशेषताको लेके श्रोत्रका श्रोत्र इसविशेषण से कहाहै, क्योंकि सर्व नाम रूपादि उपाधिसे रहित महासूक्ष्म आत्मा जिस जिस विषय साथ मिलता है तिस तिस नामरूप से अन्य श्रुतियों नेभी कहाहै । तथाच । + "नित्यो नित्यानाम् चेतनश्चेतनानाम् " । ताते श्रोत्रका भी श्रोत्र कहनेसे श्रोत्र इन्द्रियकी भी श्रोत्र इन्द्रिय इस अनवस्था बोधक अर्थको न ग्रहणकरके श्रोत्रोपहित शब्दानुभवी चैतन्य आत्मा को ग्रहण करना । हे सौम्य इसही प्रकार जो मनका मन है जो वाक्की भी वाक्

है " स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषश्चक्षुः " । " स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषः चक्षुः " [सो ९ । ई १० । प्राणका ११ । प्राण है १२ । (सोई) चक्षुका १३ । चक्षु है १४ ।] अर्थात् जो श्रोत्र का श्रोत्र मनका मन वाक्की वाक् करके कहाहै, सोई प्राणका प्राणहै चक्षुका चक्षुहै ॥ हे सौम्य इसप्रकार जो " श्रोत्रस्य श्रोत्रं " इत्यादि प्रतिवचनकहनेसे श्रोत्रादि इन्द्रियोंकेबिषे जोशब्दादिबिषयग्राहकशक्तिहै सोस्वयंज्योतिचैतन्यआत्माकी है तिसशक्तिमान् आत्माको इन्द्रियोंकेही बिषे इन्द्रियोंसे पृथक् साक्षात् अपना आप अनुभव करके अज्ञानजन्यजे जन्म मरणका हेतु श्रोत्रादि अनात्म विषयक आत्मभाव तिसको । " अतिमुच्य धीराः " । " अतिमुच्य धीराः " [भलीप्रकार त्यागकरके १५ । धीरपुरुष १६ ।] " प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति " । " अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृता भवन्ति " [इस १७ । लोकसे १८ । छूटके १९ । अमर २० । होतेहैं २१ ।] अर्थात् इसदेह इन्द्रिय पुत्र मित्र कलत्रादि अनात्म विषयक अहं मम भावरूप संसारसे छूटके अमरभाव को प्राप्तहोतेहैं २ ॥

तात्पर्य । बिना सर्व अनात्म एषणाके त्यागकिये कदापि अमरभावको प्राप्तहोते नहीं, ऐसा अन्य श्रुतियोंकाभी प्रमाणहै । तथाच । " *न कर्म्मणानप्रजयाधनेनत्यागेनैकेअमृतत्वमानशुः, + आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् , × यदासर्वेप्रमुच्यन्तेकामा, ० तत्र ब्रह्मसमश्नुते,, इत्यादि । ताते हेशिष्यश्रोत्रादि सर्वसेपृथक् सर्वका प्रकाशक आत्माहै तिसको साक्षात् अपना आप अनुभव करके श्रोत्रादि सम्पूर्ण अनात्म विषयक सर्व एषणा सहित आत्मभाव जिस बुद्धिमान्ने निःशेष त्याग कियाहै सोई पुरुष अनात्मधर्म्म जे जन्म मरणादि तिनसे छूटके अजर अमर अभय परमशान्ति (मोक्ष) भावको प्राप्तहोते हैं ॥ ॐतत्सत् ॥

---

* कैवल्यउ० विषे । + × ० कठवल्ली उपनिषद्विषे ।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो
न विजानीमो। यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदि
तादथोऽअविदितादधि इति। शुश्रुम पूर्वेषां ये
नस्तद्व्याचचक्षिरे ३ ॥

[पदान्वयः]

तत्र चक्षुः न गच्छति (तत्र) वाक् न गच्छति (तत्र) मनः न (गच्छति) [तस्मात्] न विद्मः न विजानीमः यथा एतत् अनुशिष्यात्। अन्यत् एव तत् विदितात् अथः अविदितात् अधि इति शुश्रुम पूर्वेषां ये तत् नः व्याचचक्षिरे ३ ॥

[पदार्थः]

तहां चक्षु नहीं जाते (तहां) वाणी नहीं जाती (तहां) मन नहीं (जाता) [एतदर्थ] नहीं जानते हम [अरुयहभी] नहीं जानते कि किसप्रकार इसब्रह्मका अपने शिष्योंप्रति उपदेश करें (क्योंकि) पृथक् ही है सो विदितसे (अरु) सोईब्रह्म अविदित से ऊपर (पृथक्) है ऐसाश्रवण कियाहै उनपूर्वाचार्यों का (वचन) जो उसब्रह्म को हमारे प्रतिउपदेश करतेहुये ३ ॥

[भावार्थमन्त्र ३]

गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य श्रोत्रादिकोंका श्रोत्रादि करके प्रतिपादन किया जो श्रोत्रादिकोंका अन्तरात्मा सोई निर्विशेष ब्रह्म है एतदर्थ "न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनः" १ तत्र चक्षुः न गच्छति (तत्र) वाग् न गच्छति (तत्र) मनः न (गच्छति) ३ [तहां १। चक्षु २। नहीं ३। जाते ४। (तहां) वाणी ५। नहीं ६। जाति ७। (तहां) मन ८। नहीं ९। (जाता)] अर्थात् चक्षुके आवान्तर सत्तारूप स्थित चक्षुका प्रकाशक प्रत्यगात्मा तिसको चक्षु विषय नहीं करते। जैसे दीपक जिस स्थानको प्रकाशता है वो स्थान दीपकको नहीं प्रकाशता, अथवा नेत्रस्थ अंजनको नेत्र विषय नहीं करते। तैसेही चक्षुके आवान्तरजे

अनुभव सत्ता चक्षुका प्रत्यगात्मा तिसको चक्षुविषय नहींकरते इसहीप्रकार वाग् मन प्राणादि कोईभी उसको विषय नहीं करते ऐसा अन्य श्रुतियोंका भी सिद्धान्त है । तथाच “ + योमनसि तिष्ठन्मनसोन्तरोयं मनो न वेद ” इत्यादि। तथा “ + यतोवाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ” इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे मन आदि सर्व इन्द्रियां हैं सो अपने २ विषय को विषयकरे हैं परन्तु उन सर्वका जोप्रत्यगात्माहै सोपूर्वोक्तप्रकारसे उनमन आदिकोंका बिषयनहीं एतदर्थही “ न[10] विद्मो[11] ” < न[10] विद्मः[11] > [नहीं १० । जानते ११ ।] अर्थात् नहीं जानते हमवो ब्रह्म कि जिसकेबिषे तुम्हारा प्रश्नहै किसप्रकारका और कैसाहै । अरु इसही कारणसे “ न[12] विजानीमो[13] य[14]थै त[15]दनु शिष्या[16]त् ” < न[12] विजानीमः[13] यथा[14] एतत्[15] अनुशिष्यात्[16] > [हम यहभी नहीं १२ । जानते कि १३ । किसप्रकार १४ । इसब्रह्मका १५ । अपनेशिष्यों प्रति उपदेशकरें १६ ।] अर्थात् इस प्रत्यगात्माको मनआदिकोंका विषय न होनेसे हम नहीं जानते कि वो ब्रह्मकैसा है, अरु आचार्यलोक अपने शिष्योंको उपदेश कैसेकरें । जो इन्द्रिय गोचर होताहै सो अन्यके अर्थ उपदेश कियाजाताहै सो भी जाति गुण क्रिया सम्बन्ध आदि विशेष्य विशेषणयुक्तही कियाजाताहै, अरु वो ब्रह्म जाति गुण क्रिया सम्बन्ध आदि विशेष उपाधि रहित निर्विशेषहै । एतदर्थही हम नहीं जानते जो उस निर्विशेष ब्रह्मका उपदेश कैसेकरें, ताते जो जाति गुण क्रिया सम्बन्धादि विशेषताहै तिसको ० “नेतिनेति” निषेध मुखद्वारा गिरायके शिष्योंको उपदेशकर लक्ष्यकरावतेहैं, परन्तु निषेधमुख उपदेश का जो लक्ष्यहै तिसके ग्रहणकरनेमें पुरुषार्थ अधिक कर्त्तव्यहै ॥

प्रश्न ॥ हे गुरो जो आप आज्ञा करते हौ सो यथार्थ है जो मन इन्द्रियादिकों का विषय नहीं अरु मन इन्द्रिय आदिकों से पृथक् महासूक्ष्म सर्वका प्रत्यगात्मा ब्रह्म है तिसको प्रत्यक्षादि

+ बृहदारण्यउपनिषद्विषे + ऐतरेयउपनिषद् विषे ० बृहदारण्य उपनिषद्विषे ।

प्रमाण करके जाननेको कोई भी समर्थ नहीं, परन्तु उसको वेद द्वारा जानते हैं सो जिसप्रकार आचार्य उस ब्रह्मका निषेध मुख उपदेशकर अनुभव करावते हैं सोईप्रकार आप कृपाकर कहिये॥

उत्तर॥ हे सौम्य उस निर्विशेष ब्रह्मके उपदेशार्थ वेद ऐसा कहता है कि "। अन्य[17] देव[18] त[19] द्विदितादथो[20][21] अवि[22] दितादधि[23] ।" < अन्यत्[17] एवं[18] तत्[19] विदितात्[20] अथो[21] अविदितात्[22] अधि[23] > [पृथक् १७। ही है १८। सो १९। विदितसे २०। अरुसोईब्रह्म २१। अविदितसे २२। ऊपर २३। (पृथक्) है अर्थात् श्रोत्रादिइन्द्रियां शब्दादिविषय श्रवणादि क्रिया मनआदि अन्तःकरण इत्यादि यावत् नामरूप क्रियात्मक सर्व कार्य्यभूत है सोई सर्व विदितहै तिस विदितसे वो महासूक्ष्म आत्मा पृथक्है॥

प्रश्न॥ हे प्रभो जो प्रत्यगात्मा ब्रह्म सम्पूर्ण नाम रूप क्रियात्मक कार्य्य प्रपंचसे पृथक्है तो सर्वका कारण अव्याकृति जो अविदितहै सोई ब्रह्महोगा॥

उत्तर॥ हे शिष्य जो प्रत्यगात्मा ब्रह्म सर्व विदितसे पृथक् है सोई ब्रह्म अविदित लक्षणवान् जो सम्पूर्ण विदितका मूलकारण अव्याकृति तिससेभी ऊपर (पृथक्) है। हे सौम्य जो विदित है सोसर्व उत्पत्तिमान् कार्य्यरूपहै तातेअल्पहै अरु जोअल्पहै सो नाशवान्है * "यदल्पंतन्मर्त्यं" अरुजोनाशवान्है सोदुःखरूपहै अरु जो दुःखरूप है सो त्यागनेयोग्य है, ताते विदितसे अन्य जो प्रत्यगात्मा ब्रह्म है सो त्यागसे भिन्न अत्याग है, अरु आत्मा की प्राप्तिके अर्थ अव्याकृत कारणको उपादेय (ग्रहण करने योग्य) माने तो अन्यकी प्राप्तिके अर्थ अन्यका उपादेयत्व बनेनहीं, ताते आत्माको विदित अविदितसे पृथक् कहनेकर हेयोपादेय से भी पृथक् सूचित किया है॥

प्रश्न॥ हे गुरो जब कि ब्रह्म हेयोपादेयसे भी पृथक् है तो जिज्ञासुकी आत्मजिज्ञासा निवृत्त होती है क्योंकि जो वस्तु हे-

---

* छांदोग्यउपनिषद्विषे।

योपादेयसे रहित होती है तिसके उपादेयार्थ पुरुषार्थ व्यर्थ है ॥

उत्तर ॥ हे सौम्य जो वस्तु आत्मासे भिन्न होती है सोई हेयउपादेय होती है अरु यह जो सर्वका प्रत्यगात्मा है सोई ब्रह्म है । तथाच "। ० अयमात्माब्रह्म, ? यआत्मा अपहतपाप्मा, +! यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म, × अयमात्मा सर्व्वान्तर " इत्यादि श्रुति सिद्धान्त करके सर्व विशेष्य विशेषणसे रहित सर्व्वात्मा स्वयं ज्योतिः चैतन्यकोही ब्रह्मप्रतिपादन किया है, अरु सोई आत्मा ब्रह्म विदित अविदित हेयोपादेय से पृथक् है, ताते ब्रह्म आत्मा के अभेद प्रतिपादक तत्त्वमस्यादि वाक्य द्वारा आचार्य के उपदेश की परम्परा करके उस प्रत्यगात्मा ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ताते आत्म जिज्ञासुकी जिज्ञासाव्यर्थ नहीं "। इति[२४] । शुश्रुम[२५] पूर्वेषां[२६] । ये[२७] । न[२८] । स्त[२९] । द्व्याचचक्षिरे[३०]" ९ इति[२४] शुश्रुम[२५] पूर्वेषां[२६] ये[२७] तत्[२८] नः[२९] व्याचचक्षिरे[३०] ३ [ऐसा २४ । श्रवण किया है २५ । पूर्वाचार्यों का २६ (वचन) जो आचार्य्य २७ । उस ब्रह्मका २८ । हमारे प्रति २९ । उपदेशकरतेहुए ३० ।] अर्थात् हमने श्रवणकियाहै पूर्वके ज्येष्ठ श्रेष्ठ आचार्य्योंका वचन कि जिन ब्रह्मवेत्ता आचार्य्यने उस निर्विशेष ब्रह्मका हमारे प्रति भली प्रकार उपदेशकियाहै कि ब्रह्म जो चैतन्य आत्माहै तिसकी प्राप्ति आचार्यद्वारा ब्रह्म आत्माके अभेद वाक्योंके उपदेशसे होतीहै नतु तर्कादिकोंसे।तथाच"। + नैषातर्केण मतिरापनेया, + नायमात्मा प्रवचनेन लभ्योन मेधयान बहुना श्रुतेन, ÷ न कर्म्मणा न प्रजया" इत्यादि प्रमाणसे ॥

प्रश्न ॥ हे गुरो आपने श्रुतिवाक्य करके इस अन्तरात्मा को ब्रह्मकरके प्रतिपादन किया तिसके श्रवणसे एकशंका उत्पन्न हुई कि यह आत्मा ब्रह्म कैसे होगा यह तो नामरूप क्रियावान पाप पुण्यादिकोंका कर्त्ता दुःख सुखादिकोंका भोक्ता कर्म्म उपा-

---

० मांडूक्यउ० विषे । ? छान्दोग्यविषे । +! बृहदारण्यउपनिषद् विषे । ×कठवल्लीउ० विषे । + मुंडकउ० विषे । ÷ कैवल्यउ० विषे । ÷

सनादि साधनों से ब्रह्माऽऽदि देवताओंका उपासक स्वर्गादिकों की इच्छा कर्त्ता है, ताते इस आत्मासे ब्रह्म अन्यहै क्योंकि ब्रह्म नाम रूप क्रियासे रहित अकर्त्ता अभोक्ता अकाम सर्व्व उपाधि से रहित है। ताते इस आत्मासे ब्रह्म अन्य आत्माकरके उपास्य शिव विष्णु ईश्वर इन्द्र प्राणादि ब्रह्महोने के योग्यहैं यह आत्मा ब्रह्म नहीं। तथाच "॰ द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलंस्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाक शीति" इत्यादि श्रुति अरु लौकिक प्रमाणसे भी आत्मासे ब्रह्म पृथक् है, अरु नैयायिकादिक भी आत्माको ईश्वर से पृथक् ही मानते हैं, अरु कर्म्मवादी पूर्व मीमांसक भी ऐसाही कहते हैं, ताते यह आत्मा ब्रह्म नहीं॥

उत्तर॥ हेसौम्य इनवाक् श्रोत्रादि संघात रूप उपाधिकेसंगसे अज्ञानके आश्रय इस चैतन्य आत्माको नामरूप क्रियावान् कर्त्ता भोक्ता कामी क्रोधी आदिकहतेहैं। तथाच"॥ आत्मेन्द्रिय मनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः" इत्यादि, जैसे घटादि उपाधिके संग से आकाशबिषे गमनागमनादि व्यापार अविचारित भासे है परन्तु विचार दृष्टिसे देखिये तो आकाश गमनागमनादि व्यवहार रहित सदा निरुपाधि एकरस अपनेआप बिषे ज्योंका त्यों है। तैसेही यह आत्मा इन्द्रियादि सर्व उपाधि अरु तत्तत् धर्म्म से रहित असंग एकरस इन्द्रियादिकोंका प्रकाशक आकाशवत् ज्योंकात्यों है। तथाच"। असंगोह्ययंपुरुषः, न लिप्यतेकर्म्मणापापकेनेति, न लिप्यतेलोक दुःखेनवाह्य, आकाशवत्सर्वगतःसनित्यः, तस्यभाषासर्व मिदंविभाति, अयमात्माब्रह्म, यआत्माअपहत पाप्मा विजरो विमृत्यु र्विशोकः" इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे। अतएव हे सौम्य मन इन्द्रिय आदि रूप उपाधिके सम्बन्धसे आत्माको कर्तृत्व भोक्तृत्व प्रतीतिमात्र है वास्तवमें मन

॰ मुंडकउ॰बिषे १कठ,वल्ली३में।२-३बृहदारण्य अ॰६में।४कठ,वल्ली ५में।

इन्द्रियादिकों का प्रकाशक मन आदिकोंके धर्म्मसे रहित मन आदिकोंका अविषय मन आदिकोंके आवान्तर परम सत्तामात्र चैतन्य ज्योतिः सर्वका प्रत्यगात्माहै सोई ब्रह्महै इससे व्यतिरिक्त ब्रह्म कोई नहीं, इस निश्चय आत्मक अर्थको स्वयं श्रुति प्रकट करती है। ताते नैयायिक मीमांसकादि मतवादी जे आत्मा से व्यतिरिक्त ब्रह्मको मानने कहनेवाले हैं सो सर्व वेदसे वाह्य अपनी कल्पनासे कहते हैं, ताते निरुपाधि आत्माही ब्रह्म है "नांतः परमस्ति" अन्यनहीं तिसको श्रुतिवाक्यसे श्रवणकरो ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिद मुपासते ४ ॥

[पदान्वयः]

यत् वाचा ऽनभ्युदितं येन वाग्अभ्युद्यते । तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यत् इदं उपासते ४ ॥

[पदार्थ]

जो वाणीकरके प्रकाशितनहींहोता (अरु) जिसकरके वाक् प्रकाशितहै सो ई ब्रह्म तुम जानो नहीं यह [ब्रह्म] जिसको ये उपासते हैं ४ ॥

[भावार्थ]

गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य "यद्वाचा ऽनभ्युदितं" { यत् वाचा अनभ्युदितं" } [जो वाणीकरके प्रकाशितनहींहोता ३] अर्थात् सत्तासमान चैतन्य लक्षणात्मक वाणीसे (जो वाक् जिह्वा मूलादि स्थानसे अकारादि स्वर ककारादि व्यंजनादिककी उत्पत्तिका कारण अरु स्वर व्यंजन मिश्रित पद रूपहोय अर्थ बोधक शब्दरूपहै। तथाच "अकारोवै सर्व्वावाक्" इत्यादिश्रुति प्रमाणसे) कहने विषे नहीं आवता, अरु "येन वागभ्युद्यते" { येन वाग् अभ्युद्यते } [जिसकरके ४ । वाग् ५ । प्रकाशितहै ६ ।]

८ मुंडकमें १ छान्दोग्य उपनिषद् विषे

अर्थात् जिस चैतन्य आत्माकरके वाक् प्रकाशित होती है किजो वाक्हीके अवान्तरहै अरु वाक् जिसको नहीं जानती । तथाच । "[१] यो [२] वाचितिष्ठन्वाचोन्तरोयं वाक् न वेद" अरु जिस निर्विशेष आत्माको वाचारूप उपाधिकी विशेषतासे वाणीकी भी वाणी करके कहाहै "तत्[७] एव[८] ब्रह्म[९] त्वं[१०] विद्धि[११]" । ६ तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि ६ [सो ७ । ई ८ । ब्रह्म ९ । तुम १० । जानो ११ ।] अर्थात् जिस चैतन्य प्रत्यगात्माकी सत्तासे यह शब्दलक्षणात्मक वाक् इन्द्रिय अपने व्यापार वक्तृत्वादि बिषे प्रकाशित अथवा प्रवृत्तहोती है तिसही चैतन्य आत्माको तुम ब्रह्म करके अनुभव करो "ने[१२] दं[१३] य[१४] दि दं[१५] मुपासते[१६]" । ८ न इदं यत् इदं उपासते ? [नहीं है १२ । यह १३ । (ब्रह्म) जिसको १४ । ये १५ । उपासते हैं १६ ।] अर्थात् नहीं है यह ब्रह्म कि जिस नामरूप क्रियात्मक उपाधि विशिष्टको नाना मतवादी उपासते हैं सो ४ ॥

हे सौम्य "तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि" इस श्रुतिकरके जो कि वाक्कीभी वाक् प्रकाशक प्रत्यगात्मा निर्विशेष । चैतन्यसत्ताहै तिसको तुम ब्रह्मकरके जानो ऐसा उपदेश करके ब्रह्मसे आत्माकी अभेदता सूचितकिया परन्तु तिसबिषे जिज्ञासुको मतवादियोंके वाक्यसे विपरीत भावना उत्पन्न न होय एतदर्थ । "नेदं यदिदमुपासते ।" इसवाक्यकरके पूर्ववाक्यके बोधकी दृढताके अर्थ पुनः कहा कि यह जो नामरूप क्रियात्मक उपाधि विशिष्ट अनात्मा सो ब्रह्म नहीं क्योंकि ब्रह्म उपाधिसे रहितहै, अरु जो सोपाधि है सो उपाधि धर्मवान् कर्त्ता भोक्ता जन्म मरणवान् आत्मा है । एतदर्थही जो मनआदि उपाधि विशिष्ट चैतन्यहै तिसको उपाधिसे पृथक् करके उपाधिका विषय न होत उपाधिका प्रकाशक स्वयंज्योतिः आत्माको ब्रह्मकरके उपदेश कियाहै, ताते श्रुति के सिद्धान्तकरके यह आत्माही ब्रह्म है इससे इतरसर्व अज्ञानियों की कल्पना है ४ ॥

---

२ बृहदारण्य विषे

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतं। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ५ ॥

[पदान्वयः]

यत् मनसा न मनुते येन मनः मतं आहुः। तत् एवं ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यत् इदं उपासते ५ ॥

[पदार्थ]

जो मनकरके नहीं मननहोता (अरु) जिसकरके मन विषयकिया कहते हैं। सोई ब्रह्म तुम जानो नहीं है यह (ब्रह्म) जो ये उपासते हैं ५ ॥

[भावार्थमन्त्र ५]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य "यन्मनसा न मनुते" (यत् मनसा न मनुते) [जो १। मनकरके २। नहीं ३। मनन होता ४।] अर्थात् जो निर्विशेष चैतन्य सत्ता मन उपलक्षणकरके मन बुद्धि चित्त अहंकारवृत्ति चतुष्टयात्मक अन्तःकरण, अथवा मननकरिये जिस कारणकरके सो मन तिस मनकरके संकल्प वा मननमें नहीं आवता न निश्चय कियाजाताहै, अरु "येना हु मनो मतं" (येन मनः मतं आहुः) [जिसकरके ५। मन ६। विषय किया ७। कहते हैं ८।] अर्थात् जिस अपने उपहित चैतन्य के आभासयुक्त अन्तःकरण सोई अपनी साभास वृत्तिकरके मनन कर्त्ता मनसो ब्रह्म करके विषयकिया अर्थात् व्याप्त ऐसा कहते हैं तातें "तदेवं ब्रह्म त्वं विद्धि" (तत् एवं ब्रह्म त्वं विद्धि) [सो ९। ई १०। ब्रह्म ११। तुम १२। जानो १३।] अर्थात् सोई मन उपहित चैतन्य जोकि सर्व्वान्तर प्रत्यगात्माहै वह परमात्मा परब्रह्म तुम जानो, अरु। "नेदं य दिदं मुपासते"। (न इदं यत् इदं उपासते) [नहीं है १४। यह १५। (ब्रह्म) जो १६। ये १७ उपासतेहैं १८।]अर्थात् नहीं है यह ब्रह्म जो वृत्तिचतुष्टयात्मक अन्तःकरण है जो वेदसे वाह्यमतवादी यह मनबुद्ध्यादि जि-

नको ब्रह्मकरके उपासते हैं, अर्थात् मनवादी मनको विज्ञानवादी बुद्धिको ब्रह्मकरके उपासते हैं। इसप्रकार जो जो मतवादी जिस जिसको ब्रह्ममानके उपासतेहैं सोई सो ब्रह्म नहीं क्योंकि मानेहुए कल्पित होतेहैं अरु जो कल्पितहै सो ब्रह्म नहीं ५॥

यच्चक्षुषा न पश्यंति येन चक्षूंषि पश्यंति तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ६॥

[पदान्वयः]

यत् चक्षुषा न पश्यंति येन चक्षूंषि पश्यंति तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यत् इदं उपासते ६॥

[पदार्थः]

जो चक्षुकरके नहीं देखते (अरु) जिसकरके चक्षुओंको देखते हैं सो ई ब्रह्म तुम जानो नहीं है यह (ब्रह्म) जो ये उपासते हैं ६॥

[भावार्थः]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य "यच्चक्षुषा न पश्यंति" { यत् चक्षुषा न पश्यंति } [जो १। चक्षुकरके २। नहीं ३। देखते ४।] अर्थात् जिस प्रत्यगात्मा चैतन्यको अन्तःकरण की साभास वृत्ति करके युक्त चक्षुइन्द्रिय रूपवत् विषय नहींकरते । अरु "येन चक्षूंषि पश्यंति" { येन चक्षूंषि पश्यंति } [जिसकरके ५। चक्षुओंको ६। देखते हैं ७।] अर्थात् जिस चैतन्य आत्माकीज्योतिसे अन्तःकरणकी वृत्तिके भेदसे अर्थात् नीलपीत आदिपृथक् २ चक्षुवृत्तियोंको लोक देखते हैं। "तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि" { तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि } [सो ८। ई ९। ब्रह्म १०। तुम ११। जानो १२।] अर्थात् उसही चैतन्य प्रत्यगात्माको ब्रह्मकरके तुम जानो "नेदं यदिदमुपासते" { न इदं यत् इदं उपासते } [नहीं है १३। यह १४। (ब्रह्म) जो १५। ये १६। उपासते हैं १७।] अर्थात् नहीं है यह ब्रह्म जिसको

... उपासते हैं ६ ॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्र मिदं श्रुतम् । त देवं ब्रह्म त्वं वि द्धि ने दं य दिदं मुपासते ७ ॥

[पदान्वयः]

यत् श्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रं इदं श्रुतम् तत् एव ब्रह्म त्वं वि द्धि न इदं यत् इदं उपासते ७ ॥

[पदार्थः]

जो श्रोत्रकरके नहीं श्रवणकरते (अरु) जिसकरके श्रोत्र यह श्रवणकियागया सो ई ब्रह्म तुम जानो नहीं है यह (ब्रह्म) जो ये उपासते हैं ७ ॥

[भावार्थ मन्त्र ७ वें का]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य चक्षुवत् । " यच्छ्रोत्रेण न शृणो ति" (यत् श्रोत्रेण न शृणोति) जो १ । श्रोत्रकरके २ । नहीं ३ । श्रवण करते ४ ।] अर्थात् जिस चैतन्य आत्मा को आकाश भूत का सूक्ष्म कार्य जिसका दिग् देवता है । तथाच । " दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशद्" । सो श्रोत्र इन्द्रिय साभास अन्तःकरणकी वृत्ति करके युक्तभी नहीं श्रवण करती, अर्थात् जो चैतन्य आत्मा श्रोत्रका विषय नहीं, अरु "। येन श्रोत्र मिदं श्रुतम् ।" { येन श्रोत्रं इदं श्रुतम् } [जिसकरके ५ । श्रोत्र ६ । यह ७ । श्रवण कियागया ८ ।] अर्थात् जिस चैतन्यकी ज्योतिरूप सत्तासे अन्तःकरणकी वृत्तिके भेद युक्त श्रोत्र इन्द्रियको लोक विषे करे हैं । " त देवं ब्रह्म त्वं वि द्धि" । { तत् एवं ब्रह्म त्वं वि द्धि } [सो ९ । ई १० । ब्रह्म ११ । तुम १२ । जानो १३ ।] अर्थात् सोई प्रत्यक् चैतन्य आत्माको तुम ब्रह्मकरके जानो " ने दं यदि द मुपासते " { न इदं यत् इदं उपासते } [नहींहै १४ । यह १५ । (ब्रह्म) जो १६ । ये १७ । उपासते हैं १८ ।] अर्थात् नहीं है यह नामरूप क्रियात्मक ब्रह्म जो ये बहिर्मुख अविवेकी पुरुष ब्रह्मकल्पना करके उपासतेहैं ७ ॥

---

१ ऐतरेयउपनिषद्विषे।

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ८॥

[पदान्वयः]

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यत् इदं उपासते ८॥

[पदार्थ]

जो प्राण (घ्राण) करके नहीं विषयकरते (अरु) जिस करके घ्राण प्राप्तहोती है। सो ई ब्रह्म तुम जानो नहीं है यह (ब्रह्म) जो ये उपासते हैं ८॥

[भावार्थमन्त्र ८ वेंका]

श्रीगुरुरुवाच॥ हे सौम्य "यत्प्राणेन न प्राणिति" (यत् प्राणेन न प्राणिति) [जो १ । प्राण (घ्राण) करके २ । नहीं ३ । विषयकरते ४ ।] अर्थात् जो चैतन्य साक्षी आत्मा को पृथिवी तत्त्वका कार्य्य नासिका पुटान्तरवृत्ति प्राण सो अन्तःकरण की वृत्ति सहितभी प्राण, अर्थात् घ्राण इन्द्रिय गंधविषयवत् नहीं विषयकरती, अरु "येन प्राणः प्रणीयते" (येन प्राणः प्रणीयते) [जिसकरके ५ । घ्राण ६ । प्राप्तहोती है ७ ।] अर्थात् जिस अन्तरात्मा चैतन्यके प्रकाशकर प्रकाशित अपने गंधादि विषयको घ्राण इन्द्रिय प्राप्तहोती अर्थात् विषय करतीहै "तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि" (तत् एव ब्रह्म त्वं विद्धि) [सो ८ । ई ९ । ब्रह्म १० । तुम ११ । जानो १२ ।] अर्थात् सोई स्वयंज्योतिः चैतन्य आत्माको ब्रह्मकरके तुम अनुभवकरो जो जिस स्वयंप्रकाश चैतन्य की सत्तापायके मनआदि सर्वइन्द्रियां अपनी २ तनमात्रा विषय को विषय करतीहैं अरुजोमनआदि विषयोंका विषयनहीं तिसही सर्वांतर प्रत्यगात्माको तुम ब्रह्मकरके अनुभवकरो "नेदं यदिदमुपासते" (न इदं यत् इदं उपासते) [नहीं है १३ । यह १४ । (ब्रह्म) जो १५ । ये १६ । उपासतेहैं १७]

अर्थात् इस प्रत्यगात्मासे व्यतिरिक्त नहीं है यह ब्रह्म जो येभेदवादी नामरूप क्रियात्मककी उपासना करते हैं ॥

इतिप्रथमखण्डः ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे शिष्य जो कि हेय उपादेय विदित अविदित से विलक्षण प्रत्यगात्मा सोई ब्रह्म है, इसप्रकार प्रजापतिने जिज्ञासुप्रति उपदेश किया परन्तु शिष्य है सो मैंहीं ब्रह्महूं ऐसा सम्यक् प्रकारसे मैंने जाना है, इसप्रकार की भावनाको न ग्रहण करे एतदर्थ शिष्यके सम्यक् बोधकी परीक्षार्थ अग्रिम खण्ड में आचार्य प्रश्न करेहैं कि "यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ" हे सौम्य जो कदाचित् तू हमारे उपदेश से मानताहोय कि ब्रह्म भलीप्रकार जानाहै तो अल्पही तूने जाना है ॥

प्रश्न ॥ हे गुरो यह तो आत्म जिज्ञासुको इष्टही है कि मैंने आत्मा ब्रह्मको भलीप्रकार जाना है, ताते आचार्य का यह प्रश्न जिज्ञासुप्रति अयोग्य है ॥

उत्तर ॥ हे शिष्य तुम सत्य कहतेहौ जिज्ञासुको ब्रह्म आत्मा का सम्यक् अभेदज्ञानका निश्चय इष्टही है परन्तु मैं आत्माको सम्यक् प्रकार जानताहौं यह भेद भावना इष्ट नहीं, क्योंकि जो जाननेयोग्य वस्तु होती है सोई विषय करनेयोग्य है अरु उसही के बिषे मैंने भलीप्रकार जाना है यह कहना बने है, परन्तु आत्मा किसीका विषय नहीं सर्व आत्माके विषय हैं क्योंकि आत्मा चैतन्य है अरु ज्ञेयरूप विषय जड है, एतदर्थ आत्माके बिषे पूर्वोक्त मैं आत्माको भलीप्रकार जानताहौं यह निश्चय असत्य है यह आत्मा सर्वका प्रकाशक साक्षी ब्रह्म है ऐसा सर्व उपनिषदादि वेदान्त शास्त्रका सिद्धान्त है, अरु सोई यहां पूर्व प्रश्नके प्रतिवचनकरके आचार्य ने उपदेश किया है कि हे सौम्य जिसको तुम पूछतेहौ सो श्रोत्रका श्रोत्र, मनका मन, वाचाकी वाचा प्राणका

ण चक्षुका चक्षु है, अरु जिसको वाचा मन चक्षु श्रोत्र प्राण दि विषय नहीं करते अरु जिस चैतन्य की सत्ता पायके चक्षु न आदि सर्व अपने २ विषयको विषय करते हैं सोई तुम ब्रह्म रके जानो, परन्तु वो ब्रह्म विदित अविदित अर्थात् कार्य्य का-ण हेय उपादेयसे अन्य है । इसप्रकार उपन्यासकरके आगे "अ-विज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्" इस श्रुतिकरके उप-संहार किया है । एतदर्थ शिष्य की यह बुद्धि कि आत्माको मैंने भलीप्रकार जाना है, तिसका निराकरण करना आचार्य को उ-चितही है । अथवा हे सौम्य जो सर्वका जाननेवाला है तिसका जाननेवाला कोई नहीं । जैसे अग्नि सर्वका दाहक है उसका दाहक कोई नहीं । तैसेही आत्मरूप ब्रह्मसे इतर आत्मा ब्रह्म का ज्ञाता कोई नहीं, ऐसा अन्य श्रुतियोंका प्रमाण है "नान्यद-तोऽस्तिविज्ञातृ" तातेआत्मासे इतर आत्माका ज्ञाता अन्यआत्मा कोई नहीं, एतदर्थ यह जोनिश्चयहै कि मैं आत्माको सम्यक् प्र-कारसेजानताहौंसोमिथ्याहीहैतातेभी "यदिमन्यसेसुवेदेति" यह जो आचार्यका जिज्ञासुप्रति प्रश्नहैसो यथार्थहीहै। अथवा हे शिष्य जो कदाचित् ऐसाही मानाजाय कि मैं ब्रह्मको भलीप्रकार जा-नताहौं तथापि श्रवणकिया जो आत्माब्रह्म सो दुर्विज्ञेय है सो कदाचित् अन्तःकरण के निःशेषदोष दूरहोनेसे कोई बिरला अ-नुभव करताहै "[२] कश्चिद्धारा प्रत्यगात्मानमैक्षत्" इस संशयको लेके भी "यदिमन्यसे सुवेदेति" इत्यादि प्रश्न जिज्ञासुप्रति आ-चार्यका यथार्थही है । हे शिष्य छान्दोग्य उपनिषद् के अष्टमा-ध्याय बिषे गाथाद्वारा कहाहै कि एक समय देवराजइन्द्र अरु असुरराज विरोचन यह दोनों आत्म जिज्ञासा करके प्रजापति (ब्रह्मा) के पासगये तब वहां बत्तीसबर्ष ब्रह्मचर्यकरनेके पश्चात् प्रजापतिने "[३] एषोक्षिणि पुरुषो दृश्यते एषआत्मेति होवाचैतद मृतमभयमेतद्ब्रह्मेति" यह प्रथम उपदेश किया कि यह जो

१ बृहदारण्य उपनिषद्बिषे । २ कठवल्ली उपनिषद्बिषे। ३ छांदोग्यउ०विषे।

चक्षुबिषे पुरुष दृष्टआवताहै यहीआत्मा अमर अभय ब्रह्महै, तब पंडित होतसन्तेभी असुरराज विरोचन अपनेआसुरी सम्पदादि स्वभाव दोषकरके ब्रह्माके किये उपदेशकोभी विपरीत अर्थ से शरीरकोही आत्मा मानताहुआ जो चक्षुबिषे शरीरकी छाया रूप पुरुषहै, सो इसवाक्यसे जिस शरीरकी छाया है उसशरीर हीको प्रजापतिने ब्रह्म आत्मा कहाहै ताते यहशरीरही आत्मा है ऐसा अपनेचित्तमें निश्चयकर तूष्णीम् होताहुआ। अरु देवराज इन्द्रने उसही उपदेशसे प्रथम शरीरकी छायाकोहीआत्मामाना क्योंकि "। नैनंछिंदन्तिशस्त्राणि।" इत्यादि वाक्य प्रमाणसे आत्माके अछेद्यादि धर्म्म छायाबिषे देख शरीर छायाको आत्मा मान प्रजापतिसे आज्ञाले स्वलोक को चला तबमार्ग में विचार किया कि जिसशरीरकी छायाको हमने आत्मामानाहै सोशरीर नाशवान्है तब छाया शरीरके अनुरूप होनेसे वोभी नाशवान् सिद्धहुई, अरु आत्माको ब्रह्माने अमरअभय कहाहै ताते यह छाया आत्मानहीं। ऐसा विचार पुनः प्रजापतिके समीप गया, तब पुनः बत्तीसबर्ष ब्रह्मचर्य करायके द्वितीय पर्य्यायसे ब्रह्माने "यएषस्वप्नेमहीयमानश्चरतीति" यह उपदेश किया तिस को श्रवणकर पुनः इन्द्रस्वधाम को चला तब मार्ग में स्वप्नस्थ आत्मा में भयआदि दोष विचार पुनःप्रजापति के पास आवता हुआ, तबउसको पुनःबत्तीसबर्ष ब्रह्मचर्य्य करायके तृतीयपर्य्याय से "तंयत्रैतत्सुप्तः समस्त सम्प्रपन्न इति" सुषुप्तिस्थ आत्मा का उपदेश किया तिसको श्रवणकर पुनःइन्द्रस्वलोक को चला तब फेरमार्गमें बिचारकरने से उस सुषुप्तिस्थ आत्माबिषे अभावादि दोष देख पुनःब्रह्मा के समीपगया तब ब्रह्मानेपुनः पांच बर्ष ब्रह्मचर्य्यकराया, इसप्रकार जब इन्द्रने बारम्बार बिचारकर प्रजापतिके समीपजाय उनकी आज्ञानुसार १०१ वर्ष ब्रह्मचर्यकिया तब अन्तःकरणका निःशेषदोष अभावहोनेसे ब्रह्मा के

१—२ छान्दोग्य उपनिषद् बिषे।

"[१]यं एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परंज्योतीरूपं सम्पद्योति" इसचतुर्थ पर्य्यायसे तुरीयसाक्षी आत्माको जो कि प्रथम पर्य्यायमें" एषोक्षिणि पुरुषो दृश्यते" इस श्रुतिसे उपदेशकिया रहा तिसको यथार्थ अपना आप अनुभवकर शान्त आत्मा होता हुआ ॥ एतदर्थ हे सौम्य अभिप्राय यह है कि यह प्रत्यगात्मा जो चक्षुका चक्षु इत्यादि प्रति वचन करके कहा है अरु जो प्रत्यगात्मा चक्षुरादिकोंका विषयनहीं अरु जिसकी सत्तासे चक्षुरादि इन्द्रियां स्वस्व विषयको ग्रहण करती हैं, अथवा स्वस्व विषय को विषय करती विषयहोती है, सो निर्विशेष महासूक्ष्म आत्मा अत्यन्त दुर्विज्ञेय है उसका यथार्थ जानना सर्व को समान नहीं। तथाच "[२]नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन" इत्यादि। अरु हे सौम्य देखो इस लौकिक व्यवहार बिषेभी कोई एकतो आचार्यके वाक्यको इन्द्रकेचतुर्थ पर्य्यायवत् यथार्थ अरु कोई एकइन्द्रके प्रथम द्वितीय तृतीय पर्य्यायवत् अयथार्थ अरु कोई एक विरोचनवत् विपरीत अर्थ को ग्रहणकरते हैं, अरु कोई एककुछभी नहीं जानते जो आचार्य्यने क्या कहा। ताते हे शिष्य यह महासूक्ष्म आत्मा अति दुर्विज्ञेय है इसका जानना तर्कादिकों से नहीं होता जो जो अपनी बुद्धिकी कल्पना से तर्कद्वारा आत्मा को प्रतिपादनकरते हैं सो तार्किकादि कोई भी नहीं जानते, एतदर्थ शिष्यके यथार्थ सम्यक् ज्ञानकी परीक्षा के हेतु "यदि मन्यसे सुवेदेति" यह आचार्यका प्रश्न सर्वथा उचितही है ॥

यदि[१] मन्यसे[२] सु[३]वेदेति[४] द[५]भ्रमेवा[६]पि[७] नूनं[८] त्वं[९]
वेत्थ[१०] ब्रह्मणो[११] रूपं[१२] यद[१३]स्य[१४] त्वं[१५] यद[१६]स्य[१७] देवे[१८]ष्वथ[१९] नु[२०]
मीमांस्य[२१]मेव[२२] ते[२३] मन्ये[२४] विदितम्[२५] ६ ॥ १ ॥

---

१ छान्दोग्य उ० विषे। २ मुण्डक उपनिषद्विषे

[पदान्वयः]

यदि मन्यसे सुवेद इति दभ्रं एव अपि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणः रूपं यत् अस्य (अध्यात्मोपाधिषुब्रह्मणोरूपं) त्वं (वेत्थ) यत् अस्य देवेषु (त्वंब्रह्मणः रूपं वेत्थ) अथ नु मीमांस्यं एव ते मन्ये विदितम् ९ ॥ १ ॥

[पदार्थः]

जो कदाचित् (ऐसा) मानताहो (कि ब्रह्मको) भलीप्रकार जानताहौ (तो) अल्प ही ७–८ (तू जानताहै) (क्या) तूं जानताहै ब्रह्मके रूपको जो इस (ब्रह्मका रूप अध्यात्मोपाधि बिषे) तूं (जानताहै अरु) जो इस (ब्रह्मकारूप) देवतोंओंबिषे(तू जानताहै) एतदर्थ अद्यापि विचारने योग्यही है तुम-को मानताहौ जानताहै ९।१ ॥

[भावार्थ]

प्रजापतिरुवाच॥ हे सौम्य " यदि मन्यसे सुवेदेति " (यदि मन्यसे सुवेद इति) [जो कदाचित् १ । (हमारे उपदेशसेऐसा) मानताहो २ । (कि ब्रह्मको) भलीप्रकार जानताहै ३ । ४ ।] अर्थात् जो कदाचित् हमारे उपदेशकरके तू ऐसामानताहो कि मैं आत्माब्रह्मको आचार्यके उपदेशसे भलीप्रकार जानताहौं तो " दभ्रमेवापि" नूनं (त्वंवेत्थ) " (दभ्रं एव अपि नूनं (त्वंवेत्थ)) [अल्पही ६।७।८ (तूजानताहै)] अर्थात् श्रेष्ठ नहीं जानता, क्योंकि एकतो तूने आपको ज्ञाता चैतन्य माना अरु दूसरे ब्रह्मको ज्ञेय जड़माना, क्योंकि जो ज्ञाताहै सो चैतन्य अजड़है अरु जो ज्ञेय है सो अचैतन्य जड़है " यद्ज्ञेयं तज्जडं " इसन्यायसे तूने श्रेष्ठ न जाना, अरु क्या " त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं " (त्वं वेत्थं ब्रह्मणः रूपं) [तू ९। जानताहै १०। ब्रह्मके ११। रूपको १२।] अर्थात् क्या उस निर्विशेष निरुपाधिब्रह्म के रूपको तूजानताहै, क्या ब्रह्मके छोटे बड़े अनेकरूपहैं अर्थात् अध्यात्म उपाधि युक्त छोटा अरु अधिदैव अधिभूत उपाधियुक्त

बड़ा, इत्यादि प्रकारसे क्या एकब्रह्म के नाना रूप हैं, अरु जो "रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च" ब्रह्मके अनेकरूपही कहो तो अस्तु परन्तु अनेकरूप जो श्रुतिने प्रतिपादन किये हैं सो उपाधि के सम्बन्धसे कियेहैं वास्तवमें ब्रह्म जो है सो "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगंधवच्चयत्" शब्दादि विषय धर्मरहित अविषय निर्विशेष है ॥

प्रश्न ॥ हे प्रभो जिसधर्मसे जिसका निरूपण होताहै सोई उसकारूपहै, इसन्यायसे ब्रह्मकोभी जिस विशेषणकरके निरूपण करिये सोई उसका रूप है ॥

उत्तर ॥ हे सौम्य श्रवणकरो चैतन्य परमात्मा है सो पृथिवी आदि भूतोंमेंसे अन्यतम अर्थात् कोई एकका अरु सर्व्वोंका अरु परिणामको प्राप्तहुए सर्व्वोंका जो धर्म्म तद्धर्मवान् नहीं। अरु तैसेही चक्षु श्रोत्रादि इन्द्रियोंका अरु मनआदि अन्तःकरणका जो कि भूतोंका रजसत्त्व गुणी भौतिककार्य्य है तिनका दर्शन श्रवण मननादि जे धर्म्म हैं तद्धर्मवान्भी आत्मा नहीं। अरु जो तू ऐसाकहे कि ब्रह्मको चैतन्यरूप करके प्रतिपादन किया है विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" अर्थात् विज्ञानघन सत् चिद् आनन्दआदि रूपसे ब्रह्मका निरूपणहै ताते सोई उसकारूप क्यों न होय,तो श्रवणकरो हे सौम्य श्रुतिने जो जो ब्रह्मकेरूप निरूपणकिये हैं सो सर्व सत्य हैं तथापि निर्विशेष परमात्मा को जो विज्ञानघनादि नामों से कहा है सो देह इन्द्रिय अन्तः करणादि रूप उपाधि सम्बन्धकरके उपाधिस्थ निर्विशेष शुद्ध ब्रह्मका उपदेश करनेके अर्थ उपाधिसे विपरीत धर्मवान् आत्माको उपाधि के धर्म्म से विपरीत धर्म्मवान् कहके लक्ष्य करायाहै, अर्थात् देहेन्द्रियादि सर्व असत्य जड़ दुःख धर्म्मा हैं ताते इनसे विपरीत आत्माको सत्य चैतन्य आनन्दरूपसे कहा है। परन्तु उपाधि के अभावसे निरुपाधि आत्माविषे विशेषके अभावसे विशेषण कोई

१--२ कठवल्ली उपनिषद्विषे। बृहदारण्य उ० अ० ५ विषे।

नहीं,एतदर्थही श्रुतिने कहा है कि “अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।” जो विज्ञात पुरुषहैं सो ब्रह्मको अविज्ञात अर्थात् किसीका विषय नहीं ऐसा जानते हैं, अरु जो अविज्ञात पुरुषहैं सो ब्रह्मको विज्ञात अर्थात् हम ब्रह्मको जानते हैं ऐसा मानते हैं।तातेजोजिस ब्रह्मकारूप तू जानताहै सो श्रेष्ठनहीं जानता अरु “यद[13]स्य[14] त्वं[15] यद[16]स्य[17] देवेषु[18]।”[1] यत्[13] अस्य[14] (ब्रह्मणः रूपं अध्यात्मोपाधिषु) त्वं[15] (वेत्थ) यत्[16] अस्य[17] देवेषु[18] (त्वं ब्रह्मणोरूपं वेत्थ तदपि दभ्रमेव); [जो १३।इस १४।ब्रह्मका रूप अध्यात्मोपाधि देहेन्द्रिय प्राण अन्तःकरणादि विशिष्ट परिच्छिन्न जिसको जीव क्षेत्रज्ञ आदि विशेषणसे कहते हैं तिसको) तू १५।(जानताहै अरु) जो १६।इस १७। (ब्रह्मकारूप) देवताओं के बिषे १८। (तू जानताहै)] अर्थात् ब्रह्मा विष्णु शिवादि देवतारूप उपाधि परिच्छिन्न जे आत्मा ब्रह्म तिसहीको तू पूर्ण निर्विशेष ब्रह्मकारूप जानता है तो भी अर्थात् अध्यात्मोपाधि अरु अधिदैवोपाधि उभय स्थानबिषे अल्पही जानता है ऐसा हम मानते हैं, क्योंकि अध्यात्म विद्याकरके प्रतिबोधित आत्मा सोई ब्रह्म है तथापि उपाधि परिच्छिन्न आत्माबिषे प्राप्तहुई जे उपाधिजन्य परिच्छिन्नता तिसकरके सोपाधि आत्माका अल्पत्व दूरहोता नहीं, तैसेही अध्यात्म अधिदैव आधिभूतादि उपाधि परिच्छिन्न आत्माका अल्पत्व मिटे नहीं, ताते सोपाधि आत्माको ब्रह्मका रूप तूने जानाहै तो अल्पही जानाहै, क्योंकि शुद्ध आत्मा ब्रह्म तो सर्व उपाधिरूप विशेषता अरु तिस विशेषताद्वारा आया जो आत्मामें विशेषण तिसके अभावसे सर्व नाम रूप उपाधिरहित परमशान्त अनन्त एक अद्वैत सर्वका भूमा अवधि आश्रय अनिर्वाच्य ब्रह्म सो सुवेद्य नहीं,अर्थात् मैं ब्रह्मको भलीप्रकार जानताहौं इत्यादि वृत्तिका विषय नहीं, ताते ब्रह्मको मैं भलीप्रकार जानताहौं ऐसा जो हमारे उपदेशसे तू मानता होय तो यहतेरा

---

१ केनोपनिषद् विषे।

माननां अल्पही है, ताते हे सौम्य सोपाधि ब्रह्म अल्प है निरुपाधि ब्रह्म दुर्विज्ञेयहै एतदर्थ "अथ[19] नु[20] मीमांस्य[21] मेव[22] ते[23]" । { अथ[19] नु[20] मीमांस्यं[21] एवं[22] ते[23] } [एतदर्थ १९। अद्यापि २०। विचारनेयोग्य २१। हीहै २२। तुमको २३।] अर्थात् जिसको तूने ब्रह्मकरके माना है सो अद्यापि तुझको विचारने योग्यही है, ताते विचारकरो हे शिष्य जबइसप्रकार प्रजापतिने जिज्ञासुप्रति कहातबश्रद्धावान् जिज्ञासु तथास्तु कहके एकान्तस्थानमें सुखासनहोय जिसप्रकार श्रुतिआचार्यनेकहातिसकेअर्थकोविचार तिसंबिषे नाना तर्कउठाय पुनः तिसका सिद्धान्त अनुभवकर गुरु प्रजापति के समीप जाय प्रणामकर कहताहुआ कि हे भगवन् "। मन्ये[24] विदितम्[25] " { मन्ये[24] विदितम्[25] } [मानताहौं मैं २४- जानाहै २५- (ब्रह्मको)] अर्थात् अब मानताहौं मैं जो ब्रह्मको मैंने जानाहै ९ । १ ॥

प्रश्न प्रजापतिका ॥ हे सौम्य जो तू ने जाना है ब्रह्मको तो किसप्रकार जानाहै सो कहो ॥

नाहं[1,2] मन्ये[3] सुवेदेति[4,5] नो न[6,7] वेदेति[8,9] वेद[10] च[11] यो नः[12]
स्तद्वेद[13,14] तद्वेद[15,16] नो न[17,18] वेदेति[19] वेद[20] च[21] ॥ १० ॥ २ ॥

[पदान्वयः]

न[1] अहं[2] मन्ये[3] सुवेद[4] इति[5] न वेद[6] इति[7] नो[8] च[9] वेद[10] (इति नो) यो[11] नः[12] तत्[13] वेद[14] तत् वेद[15] न वेद[16] इति[17] नो[18] च[20] वेद[21] (इति नो) १० ॥ २ ॥

[पदार्थाः]

नहीं[1] मैं[2] मानता[3] सुवेद[4] इति[5] नहींजानता[6] ऐसा[7] नहीं[8] पुनः[9] जानताहौं[10] (ऐसानहीं) जो[11] हमारेमध्य[12] सो[13] जानता[14] है सो[15] जानता नहीं जानता[16] ऐसो[17] नहीं[18] पुनः[19] जानता[20] है (ऐसानहीं)

[भावार्थ मन्त्रदूसरेका]

॥ जिज्ञासुरुवाच ॥ हे भगवन् "ना[1] हं[2] मन्ये[3] सुवे दे[4] ति[5] " { अहं[2] सुवेद[4] इति[5] न[1] मन्ये[3] } [मैं १। (ब्रह्मको) सुवेद २। ऐसा ३।

नहीं४। मानता५।] अर्थात् मैं ब्रह्मको भलीप्रकार प्रत्यक्षादि प्रमाणसे जानने योग्यहैऐसा नहीं मानता, क्यों जो ब्रह्म आत्मा है सो ज्ञानका विषय नहीं, ताते उस विषयक भलीप्रकार जानना बने नहीं, अतएव यह मानता हौं कि ब्रह्म सुवेद्य नहीं, क्योंकि- नो नवेदेति वेदचं ९ नवेदेति नो च वेदं (इतिनो २ [नहींजानता६। ऐसा७। नहीं८। पुनः९। जानताहौं १०। [ऐसाभीनहीं,] अर्थात्, निरुपाधि ब्रह्मको मैं जानताहौं ऐसा भी नहीं अरु नहीं जानता ऐसा भी नहीं ॥

प्रश्ण ॥ हे सौम्य तुम्हारे कहने बिषे दोष है कहां तो कहतेहौ कि ब्रह्मको नहीं जानता ऐसा नहीं, अर्थात् जानताहौं, अरु कहांकहतेहौ जानताहौ ऐसा भी नहीं अर्थात् नहीं जानता क्योंकि ब्रह्म ज्ञानका विषयनहीं। तहां जो कदापि आत्माको ज्ञानका विषय नहीं मानते तो क्यों मानते हौ जो ब्रह्मको जानता हौ, अरु जो कदापि ऐसाही मानतेहौ कि मैं ब्रह्मको जानता हौं तो क्यों नहीं मानते जो मैं ब्रह्मको भली प्रकार जानता हौं। क्या एक वस्तु जिस करके जानी जाय सोई वस्तु उस करके न जानी जाय, ऐसानहीं, अरु तुम ब्रह्मको सुवेद्य नहीं भी मानते अरु जानता हौ ऐसा भी मानते हौ, सो यह विरुद्ध है ऐसा कथन संशय विपर्य्ययको छोड़कर यथार्थ वाक्यमें नहीं होता, अरु ब्रह्म संशय विपर्य्यय रहित है, क्योंकि संशय बिपर्य्यय अनर्थके हेतुहैं, अथवा तुम्हारे वाक्य में और प्रकार भी संशय विपर्य्यय है, तुम कहतेहौ कि मैं भली प्रकार ब्रह्मको नहीं जानता इस वाक्यमें संशय है कि अद्यावधि शिष्यने ब्रह्मको नहीं जाना सो क्यों नहीं जाना, अरु मैं ब्रह्मको जानताहौं इस तुम्हारे वाक्यमें विपर्य्ययताहै कि ब्रह्म तो ज्ञानका विषय नहीं अरु यह कहताहै कि मैं ब्रह्मको जानताहौं तो जाने इसने किस अनात्माको ब्रह्मकरके मानाहै,ताते हे सौम्य तुम्हारे यह परस्पर विपरीत वाक्य संशय विपर्य्यय दोष युक्तहैं अरु संशय विपर्य्य-

यवान् पुरुष ब्रह्मको जाननेमें समर्थ नहीं क्योंकि ब्रह्मबिषे संशय विपर्य्यय दोनों नहीं, अरु संशय विपर्य्यय भावही संसारमें अनर्थका कारणहै ताते जो तूने जाना यथार्थ न जाना॥ हे शिष्य इसप्रकार जब आचार्य प्रजापतिने जिज्ञासुके सम्यक् बोधकी परीक्षाके अर्थ उसकी बुद्धिको चलायमान किया परन्तु दृढ यथार्थ बोधवान् जिज्ञासु चलायमान न हुआ अरु आपही आप विचारताहुआ जो विदित अविदित दोनोंसे अन्य आत्मा हमको पूर्व आचार्यने कहाहै अरु सोई श्रुतिका सिद्धान्तहै अरु सोई अनुभव सिद्ध है। इसप्रकार आचार्य्य, श्रुति, अनुभव, इन तीनों के बलसे ब्रह्म विद्यामें दृढ विश्वासकर्त्ता गर्जना (प्रतिज्ञा) पूर्वक उच्चस्वरसे ब्रह्मविद्या बिषे अपनी दृढ विश्वासता देखावताहुआ १० । २ ॥

प्रश्न ॥ क्या देखावताहुआ ॥

जिज्ञासुरुवाच ॥ हे प्रभो "[11]यो [12]न [13]स्तद्[14]वेद [15]तद्[16]वेद" । ८ । [11]यो [12]नः [13]तत् [14]वेद [15]तत् [16]वेद ;[जो ११ । हमारे १२ । [मध्य] सो १३। तिसको जानता है १४। सो १५। जानताहै १६।] अर्थात् जो कोई हमारे सहाध्यायी ब्रह्मचारी विद्यार्थियों के मध्य वो मेराकहा वेद वचन तिसके अर्थको भलीप्रकार तत्त्वकरके जानताहै सोई उस ब्रह्मको जानताहै ॥

प्रश्न ॥ पूर्व कहे वाक्यसे पुनः वो कौन वाक्यहै कि जिसके जानने से अविषय ब्रह्मजाना जाय ॥

उत्तर ॥ "[16]नो [17]नवेदे [18]ति [21]वेद [20]च" । ९ नवेद [17] इति [18] [19]नो [20]च [21]वेद (इतिनो) ;[नहीं जानता १७। ऐसा १८। नहीं १९। पुनः २०। जानताहौ २१। (ऐसा नहीं)] अर्थात् मैं आत्माको नहीं जानता ऐसा नहीं क्योंकि आत्मा अपना आप है तिसका न जानना क्या, अरु फेर तैसेही जानताहौ ऐसा भी नहीं क्योंकि आत्मा ज्ञानका विषय न होत ज्ञानस्वरूप सर्वका जानने वाला है ताते उसका ज्ञेयवत् जानना बने नहीं तब उसका जानना

क्या, अर्थात् आत्मा जानना न जानना जे बुद्धिके धर्म्म तिन दोनोंसे रहित सर्वका प्रकाशक साक्षी है ताते उस विषयक न जानना ऐसा भी नहीं अरु जानना ऐसा भी नहीं । तथाच “[१]ये-नेदꣳ सर्व्वं विजानीयात् तत्केन विजानीयात्” जिस करके यह सर्व जानाजाताहै सो किस करके जानिये । अर्थात् आत्मा,मन आदि इन्द्रियां अहं आदि प्रत्यय शब्दादि विषय, इन सर्व का ज्ञाता प्रकाशक चैतन्यहै उससे पृथक् उसका प्रकाशक ज्ञाता कोई नहीं तब यह कैसे कहिये जो मैंने ब्रह्मको जानाहै, अरु यह भी कैसे कहिये जो नहीं जाना क्योंकि अपना आपहै । इसप्रकार जो हमारे वाक्यको विचारके जानताहै सोई उस अपने आप आत्मा ब्रह्मको जानताहै ॥

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ११ ॥ ३ ॥

[पदान्वयः]

यस्य अमतं तस्य मतं यस्य मतं सः न वेद विजानतां अविज्ञातं अविजानतां विज्ञातम् ॥

[पदार्थः]

जिसका अमतहै तिसका मतहै जिसका मत है सो नहीं जानता विज्ञातको अविज्ञातहै अविज्ञातको विज्ञात है ११ ॥ ३ ॥

[भावार्थमन्त्रतीसरेका]

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य उक्त प्रकार जिज्ञासुकी परीक्षा के अर्थ जो गुरु शिष्यका परस्परमें संवाद तिसकी परस्पर में निवृत्तिके अर्थ श्रुति स्वयम्बोधन करेहै “ यस्यामतं तस्य मतं” { यस्य अमतं तस्य मतं } [जिसका१। अमतहै२। तिसका३। मतहै ४।] अर्थात् जिस ब्रह्म वेत्ता पुरुषका यह निश्चय है कि ब्रह्म अविज्ञातहै ज्ञानादि किसीकाभी विषय न होते विशेष ज्ञानके

---

१ बृहदारण्यविषे ॥

अभावसे केवल ज्ञप्तिमात्र है, ताते जिसको अविज्ञातहै तिसही पुरुषको मत अर्थात् ज्ञान (अनुभव) विषय है तिसमें विशेषणतासे भासमान जे ज्ञान (बोध) सोई सम्यक् ब्रह्महै। अरु "मतं यस्य न वेद सः" (यस्य मतं सः न वेद) [जिस पुरुषका ५। मतहै ६। सो ७। नहीं ८। जानता ९।] अर्थात् जिस पुरुष का यह निश्चयहै कि जाना है मैंने ब्रह्मको सो पुरुष ब्रह्मको नहीं जानता। इसही अर्थको पुनः श्रुति दृढकरेहै कि "अविज्ञातं विजानताम्" (विजानतां अविज्ञातं) [विज्ञात पुरुषको १०। अविज्ञातहै ११।] अर्थात् सम्यक् सूक्ष्मबुद्धिसे श्रुति वाक्यार्थ के जे विज्ञात पुरुष हैं तिनका यह निश्चय अनुभव है कि ब्रह्म जो परमात्माहै सो अविज्ञातहै, अर्थात् अन्तःकरण अरु तिसकी वृत्ति, अरु इन्द्रियां अरु तिनकी वृत्ति, इत्यादिमेंसे किसी का अरु सर्वका विषय नहीं ताते परमात्मा अविज्ञात अर्थात् अविदित है। अरु "विज्ञातमविजानताम्" (अविजानतां विज्ञातम् [अविज्ञातको १२। विज्ञात है १३।] अर्थात् जिनको बुद्धिकी सूक्ष्मताके अभावसे श्रुतियों के वाक्यका यथार्थ बोध न होने से देहेन्द्रिय मन प्राणादि बिषे आत्म प्रतीति ऐसेजे असम्यक् दर्शी पुरुषहैं तिनका यह निश्चयहै कि ब्रह्म विज्ञातहै, अर्थात् हमको ब्रह्म बिदित है। ताते हे सोम्य तात्पर्य यह है कि जिस विद्वान्का यह निश्चयहै कि निर्विशेष ब्रह्म अविदितहै सोई पुरुष ब्रह्मको जानता है अरु सोई यथार्थदर्शी है। अरु जिसअविद्वान का यह निश्चय है कि ब्रह्म विदित है सोई पुरुष ब्रह्मको नहीं जानता अरु सोई असम्यक् दर्शी है हे सोम्य इसवाक्य से श्रुतिने जिज्ञासुके विचारित वाक्यको कि "नाहं मन्ये सुवेदेति" मैं नहीं मानताहों ब्रह्म आत्माको मैंने जानाहै, तिसको दृढ करके अब महासूक्ष्म परमात्माको निर्विशेष लक्ष्य करावेहै॥

प्रश्न शि०॥ हे गुरो आपने अरु श्रुतिने यह निश्चय किया कि "अविज्ञातं विजानतां"। विद्वान् ब्रह्मवेत्ता के निश्चयमें ब्रह्म

अविज्ञातहै, ताते जो कदापि ब्रह्मवेत्ताको भी ब्रह्म अत्यन्तही अविज्ञातहै तो लौकिक साधारण पुरुष अरु ब्रह्मवेत्ता बिषे विशेषता न हुई, तब ब्रह्मवेत्ता "अहं ब्रह्मास्मिभावको कैसे धारणकरे हैं ॥

उत्तर ॥ हे शिष्य जो पूर्व "अन्य देवतद्विदितादथो अविदितात्" इत्यादि श्रुतिकरके कहा कि ब्रह्म जो है सो विदित अविदित दोनों भावसे पृथक्है तिस वाक्यके अनुसार सूक्ष्म बुद्धि ब्रह्मवेत्ता विचारते हैं कि जो अन्तःकरणकी अविज्ञात वृत्ति है। अर्थात् ब्रह्म अविज्ञात है ऐसी जे निश्चय आत्मक वृत्ति, अरु विज्ञात बृत्ति इन दोनों बृत्तिको साक्षीहोके जो प्रकाशैहै सोई साक्षी आत्मा ब्रह्म मैं हौं तिस मेरे बिषे बृत्ति आदि उपाधिरूप साक्ष्यके सम्बन्धसे साक्षित्वहै । अरु बृत्तिआदि उपाधिके अभावसे साक्षित्व प्रकाशकत्व आदि विशेषणोंका भी अभाव होताहै तिस अभावके पश्चात् अवशेषरहा जो निर्विशेष अस्तिमात्र भावरूप विज्ञानघन ब्रह्म सो मैं हौं, इसप्रकार निर्विशेष ब्रह्मको अपना आप अनुभव करके "अहंब्रह्मास्मि" भावको प्राप्तहोते हैं सोई श्रुति आप बोधन करे है११।३॥

प्रति बोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते आत्मना विन्दते वीर्य्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् १२।४॥

[पदान्वयः]

बोधं प्रति विदितं मतं अमृतत्वं हि विन्दते आत्मना वीर्य्यं विन्दते विद्यया अमृतत्वं विन्दते ॥

[पदार्थ]

प्रत्ययं (प्रत्यय) प्रति विदितं है सम्यक्दर्शनकियाहै (सो) अमृतत्वको ही प्राप्तहोताहै आत्माकरके सामर्थ्य प्राप्तहोताहै विद्याकरके अमृतं प्राप्तहोताहै १२।४॥

[भावार्थमन्त्र चौथेका]

गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य "प्रति बोधं विदितं" । (बोधं (बोधं) प्रति विदितं) [बोध १। (बोध) प्रति २। विदित है ३।] अर्थात् बोध शब्दकरके बुद्धिका प्रत्यय अर्थात् बुद्धि उपलक्षण करके अन्तःकरण तिसका जो अहं आदि प्रत्यय सो जिस चैतन्य स्वयं प्रकाश साक्षी करके प्रकाशित होताहै सोई सर्व प्रत्ययका साक्षी प्रत्यगात्माहै सोई सर्व प्रत्ययका दृष्टाचिच्छक्ति स्वरूप मात्रहै सो प्रत्यय करकेही प्रत्यय अवशिष्टतासे लक्ष्य अनुभव होय है ॥ जैसे चक्षु विशिष्ट सूर्य्य सत्ताकरकेही चक्षु अविशिष्ट सूर्य्य का अनुभव होयहै ॥ तैसेही साभास अन्तःकरणका जे अहंआदि प्रत्यय सो अन्तःकरण अवशिष्ट (उपहित) प्रत्यगात्मा करकेही प्रकाशित होताहै अरु तिसही करके अविषय ब्रह्म अनुभव होताहै कि जिसकी सत्ता पायके सर्व प्रत्यय अपने २ व्यापार में प्रवृत्त होते हैं। तथाच "विज्ञातेर्विज्ञाता" । क्यों जो विज्ञाता जे बुद्धि तिसका भी विज्ञाता है, अर्थात् जिसके प्रकाश में बुद्धि के सर्व प्रत्ययोंका उत्थानलय भावाभाव सिद्ध होताहै सोई स्वयंज्योतिः साक्षी प्रत्यगात्मा ब्रह्महै, तातें "नविज्ञातेर्विज्ञातारंविजानीयात्" । बुद्धिकेविज्ञाता कों बुद्ध्यादि कोई भी विषय नहीं करते, एतदर्थ ब्रह्म अविदितहै। हे सौम्य इसप्रकार विचारके जिस विज्ञात पुरुष ने उस निर्विशेष अविषय ब्रह्म अपनेआप सर्व प्रत्यगात्मा को सर्व्व उपाधिसे रहित सर्व्वका प्रकाशक नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्व्वात्मा निर्विशेष एक अद्वैत लक्षण भेदके अभाव से सर्व भूतों बिषे आकाशवत्, अर्थात् जैसे आकाश घट मठ गिरि गुहा अरण्यादि उपाधिबिषे उपाधिके धर्म्म से रहित समान एकरसहै। तैसेही "आकाशवत् सर्व्वगतःसनित्यः" । आकाशवत् समान एकरसजानाहै तिसका "मतं" । (मतं) [सम्यक् दर्शन है ४।] अर्थात् सोई सम्यक् आत्मवेत्ता ब्रह्मज्ञानी सम्यक्

१ बृहदारण्य उ० बिषे। २ बृदारण्यश्र० ५ में। ३ तैतरीयउ० बिषे।

दर्शी है, अरु सोई "अमृतत्वं हि विंदते" {अमृतत्वं हि विन्दते} [अमृतत्वको ५। ही ६। प्राप्तहोताहै ७।] अर्थात् सम्यक् आत्मज्ञानी अमरणभाव जेपरमात्मासाथ अभेदलक्षणरूप मोक्ष तिसको निश्चय प्राप्तहोताहै " हे सौम्य कोई एकआचार्य इस प्रकारभी कहते हैं कि बोध क्रियाका कर्त्ता आत्माहै,सो बोध क्रिया लक्षणकरके बोधक्रियाका कर्त्ता जाना जाताहै ताते आत्माको "प्रतिबोध विदितं" ऐसाश्रुतिने प्रतिपादन किया है, जैसे जो वृक्षशाखाको चालनकरे है सोई वायुहै। तैसेही जो बोध क्रियाका कर्त्ता है सोई आत्मा है। तब बोधक्रिया शक्तिमान् जो आत्मा सो द्रव्य है बोधस्वरूप नहीं क्यों जो बोध तो उत्पत्ति विनाश होताहै ताते क्षणिकहै, जब बोध उत्पन्न होताहै तब बोधक्रिया के संग आत्मा सविशेष होताहै अरु जब बोध नष्ट होताहै तब नष्ट बोध आत्मा जड़ द्रव्यमात्र निर्विशेष होताहै ॥ हे सौम्य इसप्रकारके अर्थसे विकारवान् आत्मा सावयव हुआ अरु जब सावयव हुआ तब अनित्य अशुद्ध हुआ इसप्रकार विक्रियावान् आत्माबिषे अनात्म दोष सिद्ध होते हैं तिसको दूर करनेको वो उक्तप्रकार से कहनेवाले आचार्य कदापि समर्थ नहीं अरु श्रुति ने आत्माको "[१] सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म" सच्चिदानन्द लक्षण करके लक्षित लक्ष्यकराया है। ताते जे आचार्य आत्माको बोध क्रिया का कर्त्ता कहते हैं सो वेदसे बाह्य बोलते हैं,, अरु जो कणाद आचार्य है सो आत्मा बिषे संयोगज] संयोगजन्य [बोध मानते हैं, अर्थात् कहते हैं कि आत्माको बुद्धिका सम्बन्ध होनेसे आत्मामें बोधोत्पत्तिहोती है ताते आत्मा बोधवान् है बोधक्रिया का कर्त्ता नहीं परन्तु द्रव्यमात्र तो है ही है ॥ हे सौम्य इसपक्ष में भी अचेतन द्रव्यमात्रही ब्रह्महै, सो इसपक्षको भी।" ज्ञान-मानन्दं,प्रज्ञानं, विज्ञानघनं"। इत्यादि अनेक श्रुतियोंने बाधित कियाहै, अरु आत्माको सर्व्वात्मा होनेसेभी वो अन्तःकरणादि

१ तैतरेय उ० बिषे ।

किसीकेभी धर्मसे तत्तद्धर्म्मवान् होता नहीं क्यों जो निराकार निर्विकार सत्तामात्रहै "[1] असंगो नहि सज्जते, असंगोह्ययंपुरुषः, [2] अशक्तंसर्वभृच्चैव"। इत्यादि श्रुति स्मृतिके वाक्यप्रमाणसे कणादमत श्रुतिवाह्य अप्रमाण है, अरु न्यायकरके भी विरुद्ध है क्योंकि गुणवान्का गुणवान्केसाथ संसर्ग होताहै अतुल्यजाति का परस्पर सम्बन्धहोता नहीं, ताते निर्गुण निर्विशेष निराकार सर्वसे विलक्षण आत्मा सो किस अतुल्यजातीय करके संसर्ग सम्बन्धवान् हो सकता कदापि न होगा, ताते कणादमत न्यायकरके भी अरु अनेक श्रुति स्मृतियों के प्रमाण करके भी वेद विरुद्ध अप्रमाणही सिद्धहै॥ अतएव सबश्रुति स्मृतिप्रमाण अलुप्त ज्ञानस्वरूप स्वयंज्योतिः आत्मा ब्रह्म है॥ हे सौम्य इस प्रकार विचार के प्रत्यगात्मा ब्रह्मको जिसने माना है अर्थात् अपना आप अनुभव कियाहै सोई आत्मवेत्ता मोक्ष को प्राप्तहोता है॥ हे सौम्य कोई एक एकदेशी आचार्य "[3] प्रतिबोध विदितं" इस वाक्यके अर्थ को इसप्रकार वर्णन करते हैं कि आत्मा स्वसंवेद्य बुद्धिमें आत्मभावका आरोपकरके तिससे आत्मावेद्य(जाननेयोग्य) है, यह उन आचार्य्यों का कथन भी यथार्थ नहीं, क्योंकि इसमतमें आत्माको सोपाधिकत्व आवताहै, जब बुद्ध्युपाधिस्वरूपआत्माहुआ तो निरुपाधि जोआत्मस्वरूपहै तिसकी सिद्धि न भई क्योंकि "[3] आत्मन्येवात्मानं पश्यति" "[2] स्वयमेवात्मनात्मानंवेत्थत्वंपुरुषोत्तम" इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंसे आत्माका एकत्व अरु निरुपाधिकत्व अरु ज्ञानवेद्यत्व प्रतीतहोताहै, अरु जब आत्माज्ञानस्वरूपहै तब उसको ज्ञानान्तरकी अपेक्षा असंभवहै। जैसे प्रकाशको प्रकाशान्तरकी अपेक्षा नहीं॥ ताते यह एक देशी का मत भी समीचीन नहीं॥ हे सौम्य बौद्धके मतमें आत्मा इस प्रकार स्वसंवेद्यहै कि संविज्ञान जो है सो स्वसंवेद्यहै। अर्थात्

१ बृहदारण्य उ० विषे। २ भगवद्गीताविषे। ३ बृहदारण्य उ० विषे। ४ कौशीतकी उ० विषे॥

बुद्धिही आत्मरूप होकर अपनेको विषय करती है, यह बौद्धका मत भी असम्यक् है, क्योंकि इसमें विज्ञानको क्षणभंगुरत्व अरु निरात्मकत्व होजायगा क्योंकि प्रत्यक्ष जो है सो वर्तमानका प्रकाशकहै अरु क्षणान्तर विशिष्ट आत्मामें क्षणान्तर विशिष्ट वोही विज्ञान (बुद्धि) ब्रह्मका अभिव्यंजक (प्रकाशक) नहीं होसक्ती इससे बौद्धको यह अवश्यमानना पड़ेगा कि स्वात्मामें आपही क्षणमात्र विज्ञानवर्त्तताहै ताते क्षणिकत्व आत्मामें साक्षात् सिद्धहुआ, अरु जो क्षणिकहै सो निरात्मक है ताते निरात्मकत्व सिद्धहुआ, अरु "¹ नेहि विज्ञातुर्विज्ञाते विपरिल्लोपोविद्यते अविनाशित्वात् , नित्यं विभुंसर्वगतं, सएवैषमहानजआत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयः "² इत्यादि श्रुतियों से आत्मा को नित्यत्व अरु अविनाशित्व प्रतिपादन कियाहै सो उसके मतमें सर्वथा असंभव है ॥ हे सौम्य कोई एकआचार्य्य "³ प्रतिबोधविदितम् " इस श्रुतिवाक्यके अर्थ को इसप्रकार वर्णन करते हैं कि निर्निमित्तक (हेतुरहित) जो बोध सो प्रतिबोध उससे आत्मा विदित (जानाजाता) है, अर्थात् 'ब्रह्माहमस्मि' ऐसा चिन्तन करतेहुए मुमुक्षुको जो चित्तके व्यापार रहित संप्रज्ञात समाधि तिस के अनन्तर सुषुप्तिकाल के आनन्द साक्षात्कारके समान जो आत्मबोध, अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि उसही को प्रतिबोध कहते हैं, इसमें यह "⁴ अपरायत्तबोधोहि निदिध्यासनमुच्यते " वार्त्तिककारका वचन प्रमाणहै कि निराश्रय निष्कारण जोबोध तिसको निदिध्यासन कहते हैं ॥ अरु कोई एक आचार्य यह वर्णन करते हैं कि सकृत विज्ञान जो अपनी प्रवृत्तिसे एकबारही क्रिया कारक रूप अज्ञानको निवृत्त करताहै ऐसा जो विज्ञान सोई प्रतिबोधहै क्योंकि जब क्रियासे ब्रह्मात्मभावका अनुभव होगा तो आत्मा में प्रमातृत्व न हुआ तिससे पुनः ज्ञानान्तरका असंभवहोनेसे एकबारही मुक्तिका कारण जे सकृत विज्ञान तिसको प्रतिबोध

१—२—३ बृहदारण्य उ० विषे । ४ वार्तिककार वचनम् ॥

कहते हैं ॥ हे सौम्य यह निर्निमित्तक अरु सकृत बोध वादियोंके मत भी असंगत है क्योंकि अविद्याकी निवृत्ति करनेवाला जो आगंतुक (भावी) बोध सोनिर्निमित्तक नहीं होता क्यों जोकार्य्यहै सोसनिमित्तहै अरु सुषुप्तिकालीन आनन्दभी सनिमित्तकहै क्योंकिअविद्याका जो पूर्व पूर्व निरोध अवस्था संस्कार उससे उत्पन्नहुई जो आत्माकार वृत्ति तिससे अभिव्यक्त (ज्ञात-प्रकट) जोचैतन्य तिसको सुख साक्षात्कार होताहै। अरुसकृतबोध भी प्रतिबोध शब्दका अर्थ नहीं क्योंकि प्रवृत्त कर्म्म फलोंके प्रतिबन्धसे जबतक वर्त्तमान प्रमातृत्वके आभासकी निवृत्ति नहीं होती तबतक असकृत बोध अनुभव सिद्ध है। इससे यह उभय पक्षभी मुमुक्षुको आदर करने योग्य नहीं " हे सौम्य इन पूर्वोक्त समस्त अभिप्रायसे महाभाष्यकार श्रीशंकराचार्यने यहवर्णन कियाहै कि"निर्निमित्तः सनिमित्तःसकृत् वा असकृत्वा,प्रतिबोध एवहिसः" अर्थात् यह बोध निष्कारणहो वा सकारणहो,एकबार हो वा बारम्बारहो, परन्तु वा प्रतिबोध अर्थात् बोध बोध(प्रत्यय प्रत्यय) प्रति साक्षितासे प्रकाशमानहै,इससे लक्ष्यपदारथके विवेचन पूर्वक महावाक्योंसे उत्पन्नजो "परमात्माऽस्मि" यहज्ञान सोई सम्यक्ज्ञान है तिसहीसे अमृतत्वको मुमुक्षु प्राप्तहोताहै ॥

प्रश्न ॥ हे गुरो यथोक्त आत्मविद्याकरके किसप्रकार अमृतत्व [मोक्ष] को मुमुक्षु प्राप्तहोताहै ॥

उत्तर ॥ हे सौम्य " आत्मना विन्दते वीर्य्यं" (आत्मना वीर्य्यं विन्दते) [आत्माकरके ८। सामर्थ्य ९। प्राप्तहोताहै १०।] अर्थात् अपने आपही करके अमरभाव प्राप्तिका सामर्थ्य प्राप्त होताहै। धन, सहाय, मन्त्र, औषध, तप, यज्ञ, योग, व्रतादि,कृत सामर्थ्यसे मृत्युको जितनेकी शक्ति होती नहीं क्योंकि योग तपादिकृत सर्वका अनात्माकृत सामर्थ्य है, अरुअध्यात्मविद्याकृत जे सामर्थ्य है सो मोक्षके हेतुहै सो आत्माकरकेही प्राप्तहोताहै अन्यकरके नहीं तातें "विद्यया[११] विन्दते[१३] ।ऽमृतम्[१२]।" (वि-

द्यया अमृतं विन्दते ३ [विद्याकरके ११ । अमृत १२ । प्राप्तहोताहै १३ ।] अर्थात् अपने आपआत्माका श्रवण मनननिदिध्यासनरूप अनन्य आत्मविद्या कि जिसको आत्मविद्या ब्रह्मविद्या राजविद्या पराविद्या, इत्यादि नामसे कहतेहैं तिसविद्या करके अमरभाव [मोक्ष] अर्थात् अविद्याकृत जन्ममरणादि जे अनात्मधर्म तिससे रहित परम अमृत अपने आपको प्राप्तहोता है, आत्मबिचार विद्यारूप सामर्थ्य बिना अन्य उपाय मोक्षका नहीं । तथाच ।[1] " नायमात्मा बल हीनेनलभ्यः " । १२ । ४ ॥

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः । भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति १३ । ५ ॥

[पदान्वयः]

इह चेत् अवेदीत् अथ सत्यं अस्ति चेत् इह न अवेदी न् महती विनष्टिः । भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृता भवन्ति १३।५ ॥

[पदार्थ]

यहां सर्व में अधिकारी यदि जानताभया तो सत्य है यदि अधिकारीहोके न जानताभया] तो उसको) अतिदीर्घ विनाश है । भूतोंबिषे भूतोंबिषे जानके धीरपुरुष इस लोकसे उठके अमर होतेहैं १३ । ५ ॥

[भावार्थमन्त्र ५ में का]

प्रजापतिरुवाच ॥ हे शिष्य ।" इह चेदवेदीदथसत्यमस्ति " । ६ इह चेत् अवेदीत् अथ सत्यं अस्ति ६ [यहां सर्व में अधिकारी १ । यदि २ । जानताहुआ ३ । तो ४ । सत्य ५ । है ६ ।] अर्थात् सुर नर तिर्यक् प्रत्यादि यावत् प्राणी मात्रको अज्ञान करके इस अनन्त दुःखरूप जगत् बिषे नाना-

---

१ कठवल्ली उपनिषद् बिषे ॥

प्रकारके जन्म जरा मरण रोगादिकोंका कष्टा अतिदुःख देनेवाली अनिवार्य्य प्राप्तिहै, इससे तिन सर्व्वमें एक यह मनुष्यही अविद्या कारण सहित इस संसारसे छूटनेके अर्थ अधिकारी है। तो यदि समर्थ होकर आत्माको जानताहुआ, अर्थात् पूर्वोक्त श्रुतिके "अन्यदेव विदितादथो अविदितादधि" इस वाक्यप्रमाण से,विदिति, अविदित, कार्य, कारण, हेय, उपादेय, आदि सर्वसे पृथक् अविषय निर्विशेष सर्व प्रत्यय साक्षी आत्माको सम्यक् जानताहुआ तोउसका इस मनुष्य जन्ममें, जन्म, कर्म्म, जप,तप, योग,ध्यान,धारणा,दान,ज्ञान,विचार,समाधि, आदि सर्व सत्यही है,अर्थात् उसका जन्मादि सर्व सफलहै। अरु "न चे दिहा वेदीन् महती विनष्टिः" [चेत् इह न अवेदीत् महती विनष्टिः] [यदि ७। पूर्वोक्त अधिकारी ८। न ९। जानताहुआ १०। तो दीर्घ ११। विनाश है १२।] अर्थात् जो कदापि पूर्वोक्त सुरनरादि प्राणी मात्रोंमेंअधिकृत यहमनुष्य अपनेआप अविषयआत्माको सम्यक् प्रकार से न जानताहुआ तो उस पुरुषका अत्यन्त दीर्घ अनन्ता विनाशहै। अर्थात् वारंवार जन्म जरा रोग मृत्यु आदिकोंका अविच्छेद लक्षणरूपा संसारगति तिसही को प्राप्त होती है। हेसौम्य इसप्रकार अपने आप निर्विषय निर्विशेष प्रत्यगात्मा को जानने अरु न जानने में जे गुण दोष हैं तिनको सम्यक्प्रकार विचारके जाननेवाले जे आत्मदर्शी ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता सो "भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः" [भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः] [भूतों १३। भूतों बिषे १४। जानके १५। धीरपुरुष १६।] अर्थात् अव्याकृत महत्तत्त्व अहंकार आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी इन आठ ८ कारण भूतोंबिषे अरु तिनका कार्य जे ब्रह्मलोकादि सर्व लोक अरु तदाश्रित स्थावर जंगमात्मक सर्वजीवप्रजा तिनकार्य्य भूतों बिषे "यः सर्व्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्व्वाणि भूतानि मन्तरोयं

१ बृहदारण्य उ०अ० ५ में।

सर्वभूतेषुचात्मानं, सर्वभूतस्थमात्मानं, भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य" इत्यादि श्रुतियों के वाक्य प्रमाणसे एक अपनेआप प्रत्यगात्मा को निर्विशेषतारूप से जानके साक्षात् अनुभवकर धीरजे बुद्धिमान् विवेकशाली आत्मदर्शी पुरुष है सो "प्रेत्यास्माँल्लोकादमृताभवन्ति" (अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृता भवन्ति) [इस १७। लोकसे १८ उठके १९। अमर २०। होते हैं २१।] अर्थात् लोकैषणा से (कि जिस बिषे वित्तैषणा अरु पुत्रैषणाका अन्तर भावहै; छूटके अमर होते हैं, अर्थात् सर्वरूपसे सर्वत्र एकअद्वैत प्रत्यगात्म भावका अनुभवकर तत्स्थितिपाय साक्षात् अमर अजर अभय ब्रह्मरूपही होते हैं। तथाच ॥ "सयो ह वैतत्परमं ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" ॥ १३। ५॥

इतिश्रीसामवेदीयतलवकारशाखीकेनोपनिषद्भाषाटीकायां द्वितियखंडः २ ॥

गुरुरुवाच हे शिष्य पूर्व प्रतिपादन किया जो "अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानतां" यह श्रुतिवाक्य तिसके श्रवण से मंद बुद्धि मध्यम जिज्ञासुको संशय उत्पत्तिका अवकाश प्राप्त भया कि जो वस्तु होती है सो विज्ञात भी होती है प्रमाणोंकरके अरु जो वस्तु नहीं होती सो अविज्ञात शश शृंगवत् अत्यन्त असत् होती है ऐसा अनुमान कर पुनः बिचारता है कि श्रुतिने ब्रह्मको भी अविज्ञात प्रतिपादन किया है ताते ब्रह्म असत्यही क्यों नहो। हे शिष्य इसप्रकार मन्दबुद्धि जिज्ञासु पुरुषको ब्रह्म के अस्तित्व विषयक विकल्पात्मक व्यामोह न होय एतदर्थ आगे वेद भगवान् आख्यायिका का आरम्भ करते हैं अथवा सोई ब्रह्म कि जो सर्वप्रकार स्तुती करने योग्य है अरु देवताओं का परादेव

---

२ ईशावास्य उ० विषे। ३कैवल्य उ० विषे। ४ केन उ० विषे। ५ मुण्डक उपनिषद् के ३ मुण्ड विषे॥

ईश्वर का भी ईश्वर सो दुर्विज्ञेय है अरु सोई देवताओं को जय का असुरोंको पराजयका हेतु सो परमात्मा क्यों नहीं किन्तु सदा सर्वत्र सर्व को सिद्ध है इस अर्थ के बोधक श्रुति वाक्य आगे देखावें हैं अथवा ब्रह्मविद्याकी श्रेष्ठता प्रशंसाके अर्थ उत्तर ग्रंथका प्रारम्भ करते हैं क्योंकि अग्नि इन्द्रादि देवताओंको केवल ब्रह्म विज्ञान अर्थात् ब्रह्मविद्या बोधद्वारा सर्वांतर ब्रह्म बोधसे श्रेष्ठत्व अरु पूजनीयत्व प्राप्तभया है ताते ब्रह्म विद्याका महत्त्व सर्वोत्तम है॥ अथवा ब्रह्म अति दुर्विज्ञेय है ऐसा सर्वको अनुभव करावने के अर्थ उत्तर ग्रंथका प्रारम्भहै क्योंकि अग्नि आदि देवता वीर्य्य विद्या, विज्ञान, तेज आदि श्रेष्ठ गुणों करके सम्पन्न हैं तथापि क्लेश करकेही ब्रह्म को ज्ञात करते भये अरु सर्व देवताओं का अधिपति ईश्वर होत सन्ते भी इन्द्र ब्रह्म के जानने में समर्थ न भया अरु ब्रह्मविद्या के विना प्राणियों को कर्तृत्वादि अभिमान है सो मिथ्याही है जैसे देवताओं ने सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमात्मा के महत्त्व को विनाही जाने असुरों के जय करने में अपना मिथ्याही अभिमान किया सो परिणाम में व्यर्थ भया तैसे इत्यादि तात्पर्य्य बोधनार्थ उत्तर ग्रंथका प्रारम्भ करते हैं॥

ओंतत्सत्ब्रह्म॥

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयंत। त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति॥ १४-१॥

[पदान्वयः]

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणः विजये देवा अमहीयंत ते ऐक्षन्तः अस्माकं एव अयं विजयः अस्माकं एव अयं महिमा इति॥ १४-१॥

[पदार्थ]

ब्रह्म सोई देवताओं के अर्थ विजय प्राप्त करताभया तिस

ही[६] परमात्माके[७] विजय[८] में सर्वदेवता[९] महिमाको[१०] प्राप्त होतेभये सो[११] देखते[१२] भये हमारा[१३] ही[१४] यह[१५] विजय[१६] अरु हमारी[१७] ही[१८] यह[१९] महिमा[२०] है[२१] ॥ १४-१ ॥

[भावार्थ]

प्रजापतिरुवाच ॥ हे शिष्य प्रजापति अपने जिज्ञासु प्रतिक- हतेभये कि हे सौम्य पूर्व किसी एककालमें देवासुर संग्रामभया तहां असुरोंसे देवता जयप्राप्तकर कोई एक मेरुकिंवा । हिम शि- खरादि स्थानमें विश्राम करते परमात्मशक्तिको न जान परस्पर विवाद करते भये । हे सौम्य ''। ब्रह्म[१] ह[२] देवेभ्यो[३] विजिग्ये ,।, ६ब्रह्म[१] ह[२] देवेभ्यो[३] विजिग्ये ६[परमात्मा १ । सोई २ देवताओंके अर्थ ३। विजय प्राप्तकरताभया ४।] अर्थात् पूर्व विदित अविदितसे भिन्न सर्वप्रत्ययदर्शी अविषय निर्विशेष परमात्मा जो ,।, प्रतिबोधवि- दितं ,।, इस श्रुतिसे प्रतिपादन कियाहै सोई परमात्मा इंद्रादि देवताओं के अर्थ विजयप्राप्त करताभया ताते देवताओंके मध्य विजयका हेतु स्वयंआपही हैं तैसेही असुरोंके मध्य पराजयका हेतुभी हैं क्यों जो उस्से इतर शक्तिमान् कोई नहीं किसीसमय देवताओंमें जयशक्ति असुरोंमें पराजयशक्ति किसी समय असुरों में जयशक्ति देवताओं में पराजय शक्तिको प्रकटकर अपनी म- हिमाको आपही देखै है ,।,*सर्वस्य द्रष्टा ,।, सो परमात्मा देवता निमित्तकरके संग्राममेंअसुरोंको जीतताभया कैसेहैं वोअसुरजगत् के वैरी ईश्वर मर्य्यादा जो वर्णाश्रमादिकोंके धर्म्म कर्म्म उपासना आदि हैं तिनके विघातक तिनको जयकर्त्ता परमात्मा '।' तस्य[५] ह[६] ब्रह्मणो[७] विजये[८] देवा[९] अमहीयन्त[१०] ,।, ६तस्य ह ब्रह्मणः विजये देवा अमहीयन्तं; [तिस ५ही ६ परमात्माके ७ विजयमें ८ देवता ९ महिमाको प्राप्तहोते भये १० ।] अर्थात् जो देवताओंके नि- मित्त से धर्म्मविघातक असुरों का जयकर्त्ता जे सर्व महिमा- वान् परमात्मा तिसकी विजय महिमा में इंद्रादि सर्वदेवता सर्वत्र पूज्यादि महिमावान् होतेभये परन्तु जिस सर्वान्तर प्र-

त्यगात्मा सर्व शक्तिमान् परमात्मा जो सर्व को सर्व कर्मों का फलदाता है अरु जिसकी सत्ताके आश्रय सर्व जगत् की स्थिति पालना संहारादि व्यापार होता है तिस प्रत्यगात्मा की विजय महिमा को न जानके "। त ऐक्षंतास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमे ति "। (ते ऐक्षंत अस्माकं एव अयं विजयः अस्माकं एव अयं महिमा इति ; [सो।देखतेभये हमाराही यह विजय हमारी ही यह महिमाहै] अर्थात् सोऽग्न्यादि देवता अग्नि आदि नामरूप शरीराभिमानी अपने आप कृत विजय महिमा को मान असत्य अभिमान कर परस्पर कहते भये कि हमहीं ने इन असुरों का जय किया है अरु हमारी ही यह सर्व विजय महिमा है। हे सौम्य इस प्रकार अग्न्यादि सर्व देवता सर्व शक्तिमान् प्रत्यगात्मविषयक अज्ञानवश असत्य अभिमान कर परस्पर वाद करते भये जो असुरों को हमने जय किया २। इस प्रकार अग्नि वायु इन्द्रादि देवता विजयफल की प्राप्ति में अपनाहीं पुरुषार्थ मानते भये परन्तु सर्वांतर जे प्रत्यगात्मा ईश्वर तिसका दिया विजय फल है तिसको न जानते भये १४। १॥

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति १५। २॥

[पदान्वयः]

तत् ह एषां विजज्ञौ तेभ्यः ह प्रादुर्बभूव तत् न व्यजानंत किं इदं यक्षं इ ति १५। २॥

[पदार्थ]

सो निश्चय इनदेवताओंको जानताभया तिन देवताओं के अर्थ निश्चय प्रादुर्भूत होताभया तिसको न जानतेभये कौन यह पूजनीयहै ऐसा १५।२॥

भावार्थ मंत्र २ का

प्रज्ञा० हे सौम्य "। तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव ,।,

तत् ह एषां विजज्ञौ तेभ्यः ह प्रादुर्बभूव ; [सो १ । ई २ । इनदेवताओं को ३ । जानता भया ४ । तिन देवताओं के अर्थ ५ । निश्चय ६ । प्रादुर्भूत होता भया ७ ।] अर्थात् सोई परमात्मा जो सर्व प्रत्ययों का साक्षी निर्विशेष है सो निश्चय इन देवताओंको जे मिथ्याभिमानी हैं तिसको जानताभया वो सर्व का द्रष्टा है एतदर्थ देवताओं का मिथ्याभिमान समझ देवताओं पर कृपा करके कि मिथ्याभिमान करके ये देवता असुरवत् पराजय न पावें एतदर्थ मिथ्या अभिमान निवारण करके अनुग्रह करूं ऐसा विचार सर्व का प्रत्यगात्मा सर्व शक्तिमान् निर्विशेष अविषय ब्रह्म सो उन अग्नि आदि असत्याभिमानी देवताओं के हितार्थ जो परमात्मा बुद्ध्यादिकों का विषय न होत निर्विशेष सर्व का प्रकाशक है अपनी योग शक्ति निमित्त करके अति अद्भुत सर्व को विस्मयकारक अपूर्वरूप से इन्द्रादि देवताओं के दृष्टिगोचर होत प्रत्यक्ष होताभया परन्तु । " तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ", । तत् न व्यजानंत किं इदं यक्षं इति ॥ [वो प्रादुर्भूत ब्रह्मतिसको ८ न ९ जानतेभये १० किकौन ११ यह १२ पूजनीयहै १३ १४ ।] अर्थात् वो विशेषरूपसे प्रादुर्भूत जो निर्विशेष ब्रह्म तिसको देवता न जानके परस्पर कहतेभये कि हे भाई यह अपनी दृष्टिगोचर जो महा अद्भुत अपूर्व विस्मय कारक प्रकाशरूप पूजनीय कौनहै मत कोई असुरही मायारूपकरके पुनः अपने सन्मुख आयाहो इसको भली प्रकार से जानना योग्य है १५ । २ ॥

ते ऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ १६ । ३ ॥

[पदान्वयः]

ते अग्निं अब्रुवन् जातवेद एतत् विजानीहि किं एतत् यक्षं इति तथा इति ३।६१ ॥

[पदार्थ]

सोदेवता अग्निसे कहतेभये (कि) हेजातवेद यह ज्ञातकरो कौन यह पूजनीय है तथाऽस्तु १६ । ३ ॥

[भावार्थमंत्र तीसरेका]

प्रजा० हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार उस अति अद्भुत सविशेष ब्रह्म रूपको न जानके "। ते अग्नि मब्रुवन् (ते अग्निं अब्रुवन्) (सो देवता १।अग्निसे २। कहतेभये ३।) अर्थात् उस सविशेष ब्रह्मको जाननेकी इच्छाकरते सर्वदेवता अग्निदेवसे कहतेभयेकि हे अग्नि ।"जातवेदएतद्विजानीहि"। (जातवेदं एतत् विजानीहि) [हेजातवेद ४। इसको ५। ज्ञातकरो ६।७] अर्थात् हे जातवेद सर्व के जाननेवाले अथवा उत्पन्नभया है वेद जिस लोकादि अग्नि से सो कहिये जात वेद ऐसा जो तू है सो हम सर्व देवताओं के मध्य तेजस्वी अरुपराक्रमी है तातेइसको जो यह हम तुम सर्वके दृष्टिगोचर महाअद्भुत अपूर्व परमतेजवान् पूजनीय प्रतीत होता है तिसको सर्व रीति से ज्ञात करो जो "।"किमेतद्यक्षमिति ,।, (किं एतत् यक्षं इति) [कौन ८ यह ९, पूजनीय है १०। ११]अर्थात् कौन यह महाप्रतापवान् अपूर्व पूजनीयहै। इसके समीपजाय भलीप्रकार ज्ञातकरो इस प्रकार जब सर्व देवताओं ने कहा तबवो अग्नि इन्द्रादि देवतासे "।" तथेति ,।, (तथा इति) [तथास्तु १२ऐसाकहताभया१३] अर्थात् देवताओं के वाक्यको अंगीकार करताभया १६। ३ ॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदावा अहमस्मीति १७४॥

[पदान्वयः]

तत् अभ्यद्रवत् तं अभ्यवदत् कः असि इति। अब्रवीत् अग्निः वा अहं अस्मि इति वा जातवेदा वा अहं अस्मि इति ॥

[पदार्थ]

सो अग्नि जाताभया सोपरमात्मा प्रश्नकरताभया (तू) कौन है इति (तबअग्नि) कहताभया अग्नि नामकरके मैं हूं अथवा जातवेदा मैं हूं इति १७ । ४ ॥

[भावार्थ मन्त्रचौथेका]

प्रजा० हे सौम्य उक्तप्रकार सर्व देवताओं ने अग्नि से जब कहा तब '१' तदभ्यद्रवत् ,।, २ तत् अभिअद्रवत् ३ [सो१अग्नि जाताभया २ ।] अर्थात् अग्निदेव उस पूजनीय परमदेव के समीप जाताभया । परन्तु जिस ब्रह्मके ज्ञातके अर्थ गया तिसके समीप जातेही अपनी प्रगल्भतासे रहितहोय तूष्णी खड़ा रहा अर्थात् उस परमअद्भुत विशेष स्वरूपवान् परमात्मा के समीप उसकी परीक्षार्थ सर्व पुरुषार्थवान् अग्निगया सो उस परमशक्तिमान् सर्वज्ञ स्वयं प्रकाश परमात्मा के समीप जातेही प्रश्न शक्ति में रहित काष्ठवत् मौन होके खड़ारहा । तब '१' तंदभ्यवदत् ,।, २ तंत् अभि अवदत् ३ [वोपरमात्मा ३ प्रश्न करता भया ४ ।] अर्थात् सो सविशेष परमात्मा कि जिसकेपास अग्नि खड़ा है अपने समक्ष खड़ा जो अशक्तिमान् अग्नि तिस प्रति प्रश्न करताभया कि '१' कोऽसीति ,।, २ कः असि इति ३ [तू कौन ५ है ६-७ -] अर्थात् तू कौन है । एतना जब उसअद्भुत अपूर्व पूजनीयने प्रश्न किया तब उस प्रश्नद्वारा उत्तरप्रदान शक्ति पाय साभिमान अग्नि '१' अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदावा अहमस्मीति ,।, २ अब्रवीत् अग्निः वा अहं अस्मि इति वा जातवेदा अहं अस्मि इति ३ [कहताभया ८ अग्नि ९ मैं १० हूं ११ अथवा १२ जातवेदा१ ३।१४ मैंहूं १५ बस १६] अर्थात् वो साभिमान अग्नि कहता भया कि अग्नि नामकरके अरु जातवेदा विशेषण करके विख्यात जो प्रत्यक्षदेव सो मैं हूं १७ । ४ ॥

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्यं मित्यपीदं छं सर्वं। दहेयं यं दिदं पृथिव्या मि ति १८।५॥

[पदान्वयः]

तस्मिन् त्वयि किं वीर्य्यं इति अपि इदं सर्वं दहेयं यंत् इदं पृथिव्यां इति १८।५॥

[पदार्थ]

तिसे तेरे विषे क्या सामर्थ्य है एतनो। निश्चय यह सर्व भ-स्म करताहों जो यह पृथिवी विषे हैं सो १८।५॥

[भावार्थ मन्त्र५सेंका]

॥ प्रजा० ॥ हे सौम्य उक्त प्रकार अग्नि ने साभिमानता-पूर्वक जब उस पूजनीय परमात्मा प्रति अपने को नाम द्वो करके विख्यात कहा तब वो अभिमान नाशक सर्व शक्तिमान् सर्वज्ञ सविशेष परमात्मा कहता भया कि हे अग्नि "। तस्मिं स्त्वयि किं वीर्य्यं "। (तस्मिन् त्वयि किं वीर्य्यं ; [तिस १। तेरे विषे २। क्या ३। सामर्थ्य है ४।] अर्थात् तिस तेरे विषे कि जो नामद्वय करके विख्यात हैं क्या सामर्थ्य है "। इ-ति "। (इति ; [इसप्रकार ५।] जब परमात्मा ने अग्नि से पुनः प्रश्न किया तब वो साभिमानी अग्नि उत्तर देता भया कि "। अपीदं छं सर्वंदहेयं यं दिदं पृथिव्यामि ति "। (अपि इदं सर्वं दहेयं यंत् इदं पृथिव्यां इति ; [निश्चय ६। यह ७। सर्व ८। भस्म करता हों ९। जो १० यह ११। पृथिवी बिषे है १२। सो १३।] अर्थात् पृथ्वी उपलक्षण करके सम्पूर्ण जगत् बिषे यावत् नाम रूपात्मक जो कुछ है तावत् सर्व को मैं भस्म करता हों ताते ब्रह्माण्ड दाहक सामर्थ्य मेरे बिषे है १८।५॥

तस्मै तृणं निदधावे तं दहे ति तदुपप्रेयाय ॥ सर्व जवेन तं न्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नै तं दशकं विज्ञातुं यदे तद्यक्ष मि ति ॥ १९।६॥

[पदान्वयः]

तस्मै तृणं निदधौ एतत् दह इति तत् उपप्रेयाय सर्वजवेन तत् दग्धुं न शशाक सः ततः एव निववृते न एतत् अशकं विज्ञातुं यत् एतत् यक्षं इति १६ । ६ ॥

[पदार्थ]

तिस अग्नि के समक्ष तृणं धरताभया (अरु कहा) इसको दहनकरो तब (सो अग्नि) तृण समीपजायके सर्व पुरुषार्थ करके उस (तृणको)दग्ध करनेके न शक्तिमान् होताभया (तब) सो अग्नि उस यक्षके समीपसे भी फिरताभया (अरु कहा कि) नहीं इसको जाननेको (हम) शक्तिमान् जो यह पूजनीय कौन है १६ । ६ ॥

[भावार्थ मन्त्र छठे का]

॥ प्रजा० ॥ हे सौम्य जिस परब्रह्म परमात्मा अन्तर्यामीकी सत्ताके लवलेशको पायके अग्नि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके दहन करने में सामर्थ्यवान् है तिसको साक्षात् बिशेषरूपसे अपने समक्ष न जानके अभिमान पूर्वक अपना सर्व दाहक सामर्थ्य सूचितकिया तब ॥ "। तस्मै । तृणं । निदधावेतद्दहे । ति । "। (तस्मै तृणं निदधौ एतत् दह इति) [तिसके समक्ष १। तृण २। धरताभया ३। यह ४। दहनकरो ५-६।] अर्थात् उसपरम पूजनीय परमात्मा ने तिस साभिमान अग्निके समक्ष एक सूखातृण रक्खा अरु कहा कि हे अग्ने जो तेरे बिषे सर्व ब्रह्माण्ड दाहक शक्ति हैं तो तुम यह तृण जो तुम्हारे समक्ष रक्खाहै तिसको दहनकरो अरु जो इसको दहन न करो तो सर्व दाहकत्व अभिमानको परित्याग करो । इसप्रकार जब उस परमात्माने उस साभिमान अग्निसे कहा तब अग्नि ।" तदुपप्रेयाय सर्वजवेन । त । न्न । शशाक । दग्धुं ।" (तत् उपप्रेयाय सर्वजवेन तत् न शशाक दग्धुं) [उसतृण ७। समीप जायके ८। सर्व पुरुषार्थ करके ९ तिस तृणको १०। दग्धकरने बिषे ११ न १२ शक्तिमान् होताभया १३] अर्थात् उस

तृणसमीपअपने सर्वउत्साह पुरुषार्थ सहितजाय सर्वप्रकार उस तृणकोदग्धकरनेके अर्थ अनेक रीत्या पुरुषार्थ करताभया तथापि उसतृणको दग्धकरनेको शक्तिमान् न भया । हे सौम्य जब उस ब्रह्मदत्त तृणको दग्धकरनेमें वो जातवेदा अग्नि किसीप्रकार । समर्थ न भया तब हत प्रतिज्ञहोय लज्जा संयुक्त "। सं तते एवं निवँवृते "। (सः ततः एवं निवँवृते) [सो अग्नि १४। उसके समीप से १५। भी १६। फिरता भया १७।] अर्थात् सो अग्नि जो दाहक सामर्थ्यका अभिमानीरहा उसपरम पूजनीय ब्रह्मके समीपसे भी फिर जाय देवताओं से यह कहता भया कि (" नै तदशकं विज्ञातुं य देतद्यक्ष मि ति "। (न एतत् विज्ञातुं अशकं यत् एतत् यक्षं इ ति) [नहीं १८। इसको १९। जाननेको २०। शक्तिमान् २१। जो २२। यह २३। पूजनीय २४। कौनहै २५।] अर्थात् नहीं है इसको भलीप्रकार जानने को सामर्थ्यवान् हम कि जो यहपरम पूजनीय महाशक्तिमान् कौनहै १९। ६ ॥

अथवायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति २०। ७॥

[पदान्वयः]

अथ वायुं अब्रुवन् वायो एतत् विजानीहि किं एतत् यक्षं इति तथा इति २०। ७॥

[पदार्थ]

तिसके अनन्तर वायुसे कहतेभये हे वायु यह ज्ञातकर निश्चयकरो कौन यह पूजनीय है तथाऽस्तु इति २०। ७॥

[भावार्थ मन्त्रसातवेंका]

प्रजा० हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार जब अग्निने उसपरम पूजनीय सविशेष महाशक्तिमान् परमात्माके समीपसे लज्जावान् होय देवताओं के समीप आयकहा कि मैं उसयक्षके जाननेमें

समर्थ नहीं जो यह कौनहै तब "। अथवायुमब्रुवन् ।" (अथ वायुं अब्रुवन्) [तिसके अनंतर १। वायुसे २। कहते भये ३।] अर्थात् तिसके अनंतर सर्व देवता वायु देवसे कहतेभये कि "वायवेतद्विजानीहि ।" (हे वायो एतत् विजानीहि) [हे वायु ४। यह ५। ज्ञातकरके ६। निश्चयकरो ७।] अर्थात् हे वायु देव यह अपूर्व अद्भुतस्वरूपसे जो अपनी दृष्टि गोचर स्थित अरु जिसके समीपसे अग्नि निवृत्त भयाहै तिसको आप ज्ञातकरके निश्चयकरो जो।" किमेतद्यक्षमिति ।" (किं इदं यक्षं इति) [कौन ८। यह ९। पूजनीय है १०। वस ११।] अर्थात् कौन यह महाप्रकाशवान् अद्भुतरूपसे प्रकट पूजनीयहै तिसको। हे सौम्य इसप्रकार जब सर्व देवताओंने वायुदेवसे कहा तब वायु।" तथेति ।" (तथा इति) [तथास्तु १२ ऐसाकहताभया १३।] अर्थात् देवताओंके वाक्यकोअंगीकार करताभया २०।७॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति। वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति २१।८॥

[पदान्वयः]

तत् अभि अद्रवत् तं अभिअवदत् कः असि इति अब्रवीत् वायुःवां अहं अस्मि इति वांमातरिश्वा अहं अस्मि इति २१।८

[पदार्थ]

वोवायु जाताभया सोपरमात्मा प्रश्न करताभया तू कौन है इति (तब वायु) कहताभया वायु नामकरके मैं हूं अरुमातरिश्वा मैं हूं इति २१।८॥

[भावार्थ]

प्रजा० हे सौम्य उक्त प्रकार जब देवताओंने वायु देवसे कहा तब तथास्तु कहके "। तदभ्यद्रवत् ।" (तत् अभिअद्रवत्) [वो वायु १। जाताभया २।] अर्थात् देवताओं से तथास्तु

कहके वायु देवता उस पूजनीय परमदेवके समीप जाता भया। परंतु जिस परमात्मा के विज्ञानार्थ गया तिसके समीप जाते ही अग्निवत् प्रश्नादि शक्तिसे रहित तूष्णीं खड़ारहा तब "। तमभ्यवदत्"। ६ तं अभिअवदत् ३ [वो सविशेष परमात्मा ३। प्रश्नकरता भया ४।] अर्थात् वो देवहितार्थ विशेष रूप धारण किये जे निर्विशेष परमात्मा सो उस अशक्तिमान् वायु प्रति प्रश्नकरता भया कि तू "। कोऽसीति"। ६ कः असि इति ३ [कौन ५। है ६-७] इस प्रकार उस सविशेष परमात्माने प्रश्न किया तब वो वायु प्रश्नद्वारा उत्तर प्रदान शक्तिपाय कहताभया "। वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीत्"। ६ अब्रवीत् वायुः वा अहं अस्मि इति ३ [कहताहुआ ८। वायु ९। नामा १०। मैं ११। हूं ४। ५] अर्थात् वायु नाम करके जे विख्यात देवता सो मैं हूं "। मातरिश्वा वा अहमस्मीति"। ६ वा मातरिश्वा अहं अस्मि इति ३ [अथवा १४। मातरिश्वा १५। मैं १६। हूं १७। इति १८।] अर्थात् अंतरिक्षमें चलने वाला ताते मातरिश्वा इस विशेषण से विख्यात जो देवता सो मैं हूं इति २ ११८

तस्मिंस्त्वयिकिं वीर्य्य मित्यपीदंग्वसर्व मादंदीयं यं दिदं पृथिव्यामिति २२। ९॥

[पदान्वयः]

तस्मिं त्वयि किं वीर्य्यं इति अपि इदं,सर्वम् आददीयं यत् इदं पृथिव्यां इति २२। ९॥

[पदार्थ]

तिसं तेरे विषे क्या सामर्थ्य है इति निश्चय यह सर्व धारणकररहाहों जो यह पृथिवी विषे है तिसको २२। ९॥

[भावार्थमन्त्रनवमेंका]

प्रजा० हे सौम्य उक्त प्रकार जब साभिमानता पूर्वक वायुने

उत्तर दिया तब परमशांत परमात्मा गम्भीर स्वरसे पुनः प्रश्न करताभया कि हे वायु॰ "। तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य" । (तस्मिं त्वयि किं वीर्यं) [तिस १ । तेरेबिषे २ । क्या ३ । सामर्थ्य है] अर्थात् तिस तेरे विषे कि जो नाम दो करके विख्यात हैं क्या सामर्थ्य हैं "। इति "। (इति) [सो कहो ५ ।] इसप्रकार जब परमात्माने सामर्थ्य विषयक प्रश्न किया तब वो साभिमान वायु उत्तर देताभया कि ।" अपी दंग्वं सर्वं मांददीयं " । (अपि इदं सर्वं आददीयं) [निश्चय ६ । यह ७ । सर्व ८ । धारण करताहौं ९ ।] अर्थात् निश्चयकरके इससर्वको मैं धारण करता हौं ।" यदि दं पृथिव्यां मिति " । (यत् इदं पृथिव्यां इति) [जो १० । यह ११ । पृथिवी बिषे हैं १२ । सो १३ ।] अर्थात् पृथिवी उपलक्षणकरके यावत् ब्रह्माण्डहैंतावत् सर्वको मैं धारण करताहौं । जैसे सूत्रमणि गणकोतैसे । अरु सर्वके उड़ावनेमें भी समर्थहौं इति २२ । ९ ॥

तस्मै तृणं निदधावे तदा दत्स्वे ति तदु पप्रेयाय सर्वजवेन तं न्न शशाका दातु स तत एव निवर्वृते नै तद शकं विज्ञातुं यदे तद्यक्षं मिति २३ । १० ॥

[पदान्वयः]

तस्मै तृणं निदधौ एतत् आदत्स्व इति तत् उपप्रेयाय सर्वजवेन तत् आदातुं न शशाक सः ततः एव निववृते न एतत् विज्ञातुं अशकं यत् एतत् यक्षं इति २३ । १० ॥

[पदार्थ]

तिसको तृणं धारताभया (अरुकहा) यह उठाओ तब सो वायु समीपजायके सर्व पुरुषार्थकरके उस तृणको उठावनेको न शक्तिमान् होताभया (तब) सोवायु उस यक्ष समीपसे भी फिरताभया (अरु कहा कि) नहीं इसको जाननेको शक्तिमान् (हम) जो यह पूजनीय कौन है २३ । १० ॥

[भावार्थमन्त्रदशमेंका]

प्रजा ० हे सौम्य जिस चैतन्य परमात्माके बल सत्ताके लवलेशको पाय वायु सर्व ब्रह्माण्डके धारने भ्रमावने में समर्थ हैं तिसको स्वसमक्ष में न जानके उसके आगे अपना सामर्थ्य साभिमानतासे सूचित किया तबवो अभिमान नाशक परमात्मा "तस्मै[1] तृणं[2] निदधाव[3]" (तस्मै तृणं निदधौ) [तिसको १ । तृण २ । धरताभया ३ ।] अर्थात् उससाभिमान वायुके समक्ष एक सूखा तृण धरके कहा कि हे वायु "। एतद[4]दादत्स्वे[5]ति[6]" । (एतत् आदत्स्व इति) [यह ४ । उठाओ ५ । बस ६ ।] अर्थात् यह जो तुम्हारे समक्ष सूखा तृण है तिसको उठाओ वा भ्रमाओ । अरु जो इसको न उठाओ तो अपने नाम द्वय सहित ब्रह्माण्ड धारक अभिमानको त्यागकरो इसप्रकार जब उस गर्व नाशक परमात्माने कहा तब वो वायु "। तद[7]उपप्रेयाय[8] सर्वजवेन[9] तन्न[10,12] शशाका[13] दातुं[11] ।" (तत् उपप्रेयाय सर्वजवेन तत् आदातुं न शशाक) [उसतृण ७। समीप जाय ८। सर्व पुरुषार्थ करके ९। तिस तृणको १० । उठावनेविषे ११ । न १२। शक्तिमान् होता भया १३ ।] अर्थात् उसतृण समीप अपने सर्व उत्साह पुरुषार्थ सहित जाय उसतृणको उठावने के अर्थ अनेक प्रकार पुरुषार्थ करताभया तथापि उस तृणको उठावने बिषे न शक्तिमान् होता भया । हे सौम्य जब उस ब्रह्मदत्त तृणको उठावने बिषे वो मातरिश्वा वायु किसी प्रकार समर्थ न भया तब हत प्रतिज्ञ होय लज्जा संयुक्त "। स[14] तत[15] एव[16] निववृते[17]" । (सः ततः एव निववृते) [सो वायु १४ । उसके समीप से १५ । भी १६ । फिरताभया १७ ।] अर्थात् सो वायु जो ब्रह्माण्ड धारक अभिमानका धारकरहा उस परमपूजनीय ब्रह्मके समीप से भी फिरजाय देवताओंसे कहताभया कि "। नै[18]त[19]दशकं[21] विज्ञातुं[20] यदे[22]। तद्यक्ष[23,24]मिति[25] ।" (एतत्[19] विज्ञातुं[20] न[18] अशकं[21] यत्[22] एतत्[23] यक्षं[24] इति[25]) [इसको १९। जानने को २०। नहीं १८।

हम शक्तिमान् २१ । जो २२ । यह २३ । पूजनीय २४ । कौन है २५] अर्थात् इसको भलीप्रकार जानने को नहीं हैं हम शक्तिमान् जो यह परमपूजनीय महाशक्तिमान् कौन है २३।१०॥

अथेंद्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्ष-
मिति तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे २४।११॥

[पदान्वयः]

अथ इंद्रं अब्रुवन् मघवन् एतत् विजानीहि । किं एतत् यक्षं इति तथा इति तत् अभिअद्रवत् तस्मात् तिरोदधे २४।११

[पदार्थ]

तिसके अनन्तर इंद्रसे कहतेभये हे मघवा यह ज्ञातकर निश्चयकरो कौन यह पूजनीय हैं बस तथास्तु इति सोइन्द्र जाता भया इंद्रसे तिरोधान होताभया २४ । ११ ॥

[भावार्थमन्त्रग्यारहमेंका]

प्रजा० हे सौम्य कहे प्रकार जब वायुदेव भी उसपरमात्मा के समीप से लज्जावान्हो देवताओं के पास आया अरु कहा कि मैं उसके जानने में समर्थ नहीं तब ।" अथेंद्रमब्रुवन् "। { अथ इंद्रं अब्रुवन } [तिसके अनन्तर १ । इन्द्रसे २ । कहते भये ३ ।] अर्थात् सर्व देवता अपने अधिपति इन्द्रसे प्रार्थना-करतेभये कि "। मघवन्नेतद्विजानीहि "। { मघवन् एतत् विजानी हि } [हे मघवा ४ । यह ५ । विज्ञातकर ६ । निश्चय करो ७ ।] अर्थात् हे मघवा आप हमारे राजा बल बुद्धि तेज करके सम्पन्नहौ ताते इस महाअद्भुत परम पूजनीय को कि जिसके समीपसे अग्नि अरु वायु बिनाहीं उसके जाने लज्जावान्हो फिर आये हैं तिसको भलीप्रकार जानके निश्चय करिये जो "। किमेतद्यक्षमिति "। { किं एतत् यक्षं इति } [कौन ८ । यह ९ । पूजनीय है १० । इति ११ ।] अर्थात् अपने समक्ष कौन यह महाशक्तिमान् परम पूजनीय हैं । हे सौम्य इसप्रकार जब

सर्व देवताओंने अपने अधिपति इन्द्रसे प्रार्थना किया तब इन्द्र ने कहा " तथेति " (तथा इति) [तथास्तु] अर्थात् इंद्र तथास्तु कहके " तदभ्यद्रवत् " (तत् अभिअद्रवत्) [सो १४ । जाताभया १५] अर्थात् सो देवराज इंद्र उस परम पूजनीय परमात्माके समीप जाताभया । हे सौम्य जब वो इंद्र अपने देवराज्याभिमान युक्त उस पूजनीय ब्रह्मके समीप गया तब वो सविशेष ब्रह्म " तस्मात्तिरोदधे " (तस्मात् तिरोदधे) [तिस कारण से १६ । तिरोधान होताभया १७ ।] अर्थात् जब इन्द्र साभिमानता से ब्रह्मके समीप आवनेलगा तिस कारणसे वो सविशेष ब्रह्म इंद्रके समक्षसे तिरोधान होताभया २४ । ११ ॥

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तांहोवाच किमेतद्यक्षमिति २५ । १२ ॥ इति तृतीयखण्डः ३ ॥

[पदान्वयः]

सः तस्मिन् एव आकाशे स्त्रियं आजगाम बहुशोभमानां उमाम् हैमवतीं तां ह उवाच किं एतत् यक्षं इति २५ । १२ ॥ इति तृतीय खण्डः ३ ॥

[पदार्थ]

सोइन्द्र तिसे ही अवकाशमें स्त्रीको प्राप्तभया सर्वशोभाओं की शोभाकरनेवाली उमानाम्नी हेमाभरणयुक्त तिसंसे ही कहताभया कौन यह पूजनीय था । इति ॥

[भावार्थ मन्त्र १२ में का]

प्रजा० वो सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमदयालु ब्रह्म सो देवराज इन्द्रका देवराजत्वादि असत्य अनात्म अभिमान दूरकरनेके अर्थ इन्द्रके समक्ष से तिरोधान भया तब " स तस्मिन्नेवाकाशे " (सः तस्मिन् एव आकाशे) सो इन्द्र १ । तिस २ । ही ३ । अवकाशमें ४ ।] अर्थात् सो देवराज इन्द्र जो उस यक्ष ब्रह्मके वि-

ज्ञानार्थ गया सो तिसही अवकाशमें कि जहां वो पूजनीय परमात्मा प्रकटहोके अन्तर्द्धान होगया तिसकाल में इन्द्र जिस अवकाशमें खड़ारहा तहांहीं स्थितहो बिचार करनेलगा कि जो अद्भुत रूपसे हम सर्वके समक्ष प्रकटहो पुनः तिरोधान होगया सो परम पूजनीय कौनथा अग्नि अरु वायु से तो उसने संभाषण भी किया अरु हम जो देवराज तिसके आवतेही तिरोधान होगया एतदर्थ हम् देवराज से तो वो अग्नि वायुकि जिसका उस परमदेव साथ सम्भाषण भया सोई श्रेष्ठ है। अरु अब हम उस परम पूजनीयका दर्शन कैसे करें उसका दर्शन करनाभी अवश्यहै सो वो अपनी कृपा शक्तिकर दर्शनदेगा। हे सौम्य इत्यादि प्रकारसे इंद्र उसी स्थानपर स्थितहो सर्व अहंकार त्यागके विचारनेलगा तब सर्वांतर्यामी सर्वज्ञ भगवान् परमात्मा इंद्रकी भक्ति अपने बिषे अधिक देख पुनः इंद्र " स्त्रियंमाजगाम " (स्त्रियं आजगाम) [स्त्रीको ५। प्राप्तभया ६।] अर्थात् स्त्री देवीके स्वरूप से प्रकट भई तिसके समीप प्राप्तभया अर्थात् इंद्रको उपदेश करने के अर्थ साक्षात्परमात्मा ब्रह्म विद्यारूपसे प्रकट होताभया सो कैसी हैं वो ब्रह्म विद्या " बहुशोभमाना " (बहुशोभमाना) [बहुत शोभावान् हैं ७।] अर्थात् सम्पूर्ण शोभावान्को शोभा करने वाली क्योंकि यावत् विद्याहै तावत् सर्व शोभाकरनेवाली शोभा रूपहैं सो भी सर्व ब्रह्म विद्याकरके शोभावती हैं। तथाच " ब्रह्म विद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठां " बिना ब्रह्म विद्याके यावत् विद्याहैं तावत् सर्व अशोभित अविद्याहैं ताते सर्व शोभाओंकी शोभा ब्रह्म विद्या हैं सो " उमां हैमवतीम् " (उमां हैमवतीम्) [उमानामा ८। हेमवती हैं ९।] अर्थात् इंद्रके समक्ष जो परमात्मा देवी रूपसे प्रकट भया सो देवी उमानाम्नी ब्रह्मविद्या हैं उससे इंद्रादि सर्बको ब्रह्मज्ञानभयाहै सो उमा कैसी हैं सुवर्ण के आभूषणादि करके भूषित हैं। अथवा उमा जो हैं सो हिमालय पर्वतपर अति शोभनीय रूपसे ब्रह्म उपदेशार्थ इंद्रके समक्ष

प्रकट भई ताते उसको हैमवती (पार्वती) नामसे कहते हैं ए-
तदर्थ पार्वती साक्षात् ब्रह्मविद्या नित्यही अपने विशेष स्वरूपसे
विशेष स्वरूप परमात्मा सर्वज्ञ सच्चिदानन्द सदा शिवके समी-
पवर्त्ते हैं अर्थात् शिवपार्वती साक्षात्परमात्माकाही विशेष रूपहैं
ताते सर्व मुमुक्षुकरके अवश्य उपासनीय हैं। हे सौम्य ऐसी जे
उमानाम्नी ब्रह्मविद्या "। तां हो वाच किं मे तं द्य क्षं मि-
ति" ।९ तां ह उवाच किं एतत् यक्षं इति "; [तिससे १०।
निश्चयकरके ११। प्रश्न करताभया १२। कौन १३। यह १४।
पूजनीय १५। था १६।] अर्थात् तिस ब्रह्म विद्यासे इंद्र प्रश्न
करता भया कि हे देवी कौन यह हमारे समक्ष पूजनीयथा जो
तिरोधान होगया सो २५। १२॥ इति तृतीयखंडः ३॥

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्व-
मिति ततो हैव विदांचकार ब्रह्मेति २६। १॥

[पदान्वयः]

सा ब्रह्म इति ह उवाच ब्रह्मणः वा एतत् विजये महीयध्वं
इति ततः एव ह ब्रह्म इति विदांचकार २६। १॥

[पदार्थ]

निश्चय वो उमा (इंद्रके प्रति उस यक्षको) ब्रह्म ऐसा क-
हतीभई ब्रह्म हीके विजयमें इस महिमाको प्राप्तहौ इसकारण
से उस उमाके वचनसे ही निश्चयसे (इंद्र उस यक्षको) ब्रह्म
ऐसा जानताभया २६। १॥

[भावार्थचतुर्थखंडमन्त्र १ का]

प्रजा० हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार जब देवराज इंद्र अपने दे-
वराजत्वादि असत्य अभिमानसे रहित ब्रह्म जिज्ञासाकरके
उस उमानाम्नी ब्रह्मविद्या साक्षात् ब्रह्मावतार से प्रश्नकर-
ताभया कि जो हमारे समक्ष से तिरोधानभया वो पूजनीय
कौनथा तब "। सा ब्रह्मे ति होवाच "। [ह सा ब्रह्म इति

उवाच) [निश्चय १ । वोउमा २ । ब्रह्म ३ । ऐसा ४ । कहतिभई ५।] अर्थात् इंद्रके प्रश्नके उत्तरमें निश्चय करके वो उमानाम्नी साक्षात् ब्रह्मविद्या इंद्रके प्रति उसयक्षको कि जिस विषयक इंद्रका प्रश्नहै तिसको साक्षात् ब्रह्महै ऐसा उपदेश करतीभई, अर्थात् हे इंद्र जिसपूजनीय के अर्थ तुम्हारा प्रश्नहै वो साक्षात् ब्रह्महीहै अरु "। ब्रह्मणोवा एतद्विजये महीयध्वं "। ६ ब्रह्मणः वाँ विजयेएतत् महीयध्वं ? [ब्रह्म ६। हीके ७। विजयमें ८। इस ६। महिमाको प्राप्तहौ १०।] अर्थात् हे इंद्र उस ब्रह्महीके विजयमें तुम इसविजयादि महिमाको प्राप्तभये हौ क्योंकि उस ब्रह्मपरमात्मानेहीं सर्व असुरोंका जयकियाहै उसकेविजयमें तुम देवता केवल निमित्तमात्रहीहौ अरुतिस निमित्तमात्रत्वसेही तुमको यह महिमा प्राप्तभई है ताते पूर्व जो तुमने यह अभिमान किया कि "। अस्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महीमेति "। हमाराही यह विजयअरु हमारीही यह महिमाहै । सो तुम्हारा अभिमान मिथ्या है । हे सौम्य इसप्रकार जबउस ब्रह्मविद्याने इंद्रको ब्रह्मका उपदेश किया "। इति[११] ततो[१२] ह[१४] व[१३] विदांचकार[१७] ब्रह्मेति[१५।१६] "। ६ इति[११] ततः[१२] एवं[१३] ह[१४] ब्रह्म[१५] इति[१६] विदांचकार ? [इसकारणसे ११। उमाके बचनसे १२। ही १३। निश्चयसे १४। (इंद्र) ब्रह्म १५। ऐसा १६। जानताभया १७। इसकारण सेही उस उमानाम्नी ब्रह्मविद्याके उपदेशात्मक वचनसेही निश्चय पूर्वक इंद्र उसयक्षको साक्षात् ब्रह्मही हैं ऐसा जानता भया २६ । १ ॥

हे शिष्य तात्पर्य्य यह है कि अहंकारादि आसुरी सम्पदाकी अशेष निवृत्तिबिना ब्रह्मउपदेश होता नहीं ॥

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान् । यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदांचकारब्रह्मेति २७ । २ ॥

[पदान्वयः]

तस्मात्[1] वा[2] अन्यान्[3] देवान्[4] एते[5] देवा[6] अतितरां[7] इव[8] यत्[9] अग्निः[10] वायुः[11] इन्द्रः[12] ते[13] हि[14] एनत्[15] नेदिष्ठं[16] पस्पर्शुः[17] ते[18] हि[19] एनत्[20] ब्रह्म[21] इति[22] प्रथमः[23] विदांचकार[24] ॥ २७ । २ ॥

[पदार्थ]

तिस्से[1] ही[2] अन्य[3] देवताओंसे[4] ऐ[5] देवता[6] अतिशय[7] विशिष्टवर्ते[8] हैं जिस्से[9] अग्नि[10] वायु[11] इन्द्र[12] वे[13] ही[14] इसे[15] समीपस्थ[16] (ब्रह्म को) स्पर्शकरतेभये[17] वे[18] ही[19] इसको[20] ब्रह्म[21] ऐसो[22] प्रथमहुये[23] जानतेभये[24] ॥ २७ ॥ २ ॥

[भावार्थ मन्त्र २ का]

प्रजा० हे सौम्य जिस्से अग्निवायु इंद्र ये देवता ब्रह्मके सम्वाद दर्शनादि रूप कारणसे ब्रह्मके समीपप्राप्तभये " तस्माद्वा[1] एते देवा अतितरामिव अन्यान्देवान् " { तस्मात् वा अन्यान् देवान् एते देवा अतितरां इव } [तिस्से १ । ही २ । अन्य ३ । देवताओं से ४ । ये ५ । देवता ६ । अतिशय विशिष्ट ७ । वर्त हैं ८ । अर्थात् और जे वरुण कुबेर यमादि देवता हैं तिन देवताओं से ये अग्नि आदि देवता ब्रह्मके दर्शन सम्बाद स्पर्शादि करने से धन पुरुषार्थ गुण ऐश्वर्य्यादि करके अधिक तर हैं "यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुः " { यत् अग्निः वायुः इन्द्रः ते हि एनत् नेदिष्ठं पस्पर्शुः } [जिस्से ९ । अग्नि १० । वायु ११ । इन्द्र १२ । वे १३ । ही १४ । इस १५ । समीपस्थ १६ । (ब्रह्मको) स्पर्श करतेभये १७ ।] अर्थात् जिस कारण से अग्नि वायु इन्द्र वेही इस समीपस्थ ब्रह्मको " दूरात् सुदूरे " अर्थात् जो निर्विशेष परमात्मा ज्ञान बिना दूरसे भी दूर हैं सो देवताओं के हितार्थ एक विस्मय कारक अद्भुत अपूर्व रूपसे देवताओंके समीप प्रकटभया तिस समीपस्थ ब्रह्मको । अथवा जो सर्व के समीप बुद्धिरूपी गुफा विषे सर्वका प्रत्यगात्माहै सो देवताओं के हितार्थ वाह्यप्रदेशमेंअद्भुत विशेष

रूपसे प्रकटभया ताते इस समीपस्थ ब्रह्मको ब्रह्मदत्त तृण अरु सम्भाषण द्वारा स्पर्श करतेभये अरु "तं[18] ह्ये[19] नेत्[20] प्रथमो[23] विदांचकार[24] ब्रह्मे[21] ति[22] " (ते[18] हि[19] एनत्[20] ब्रह्म[21] इति[22] प्रथमः[23] विदांचकार[24]) [वे १८। ही १६। इसको २०। ब्रह्म २१। ऐसा २२। प्रधानहुये २३। जानते भये २४।] अर्थात् वेही अग्नि वायु इन्द्र जो ब्रह्मका दर्शन स्पर्शन करतेभये सोई इस सविशेष पूजनीय को ब्रह्महीहै ऐसा सर्व ब्रह्मवेत्ताओं में प्रधान हुये जानते भये २७। २ ॥

तस्मा[1] द्वा[2] इन्द्रो[5] ऽतितरा[6]मिवा[7]न्या[3]न्देवान्[4]त्स[8] ह्ये[9] नन्नेदिष्ठं[10] पस्पर्श[11,12] स[13] ह्ये[14] नत्[15] प्रथमो[16] विदांचकार ब्रह्मे[16] ति[17] २८। ३ ॥

[पदान्वयः]

तस्मात्[1] वा[2] अन्यान्[3] देवान्[4] इन्द्रः[5] अतितरां[6] इव[7] स[8] हि[9] एनत् नेदिष्ठं[11] पस्पर्शः[12] स[13] हि[14] एनत्[15] प्रथमः[16] ब्रह्मइति[17] विदांचकार २८।३

[पदार्थ]

तिस्से ही[2] अन्य देवताओंसे इन्द्र अतिशय विशिष्टके तुल्यहैं वो[8] ही[9] इस समीपस्थका स्पर्शकरताभया[12] वो[13] ही[14] इसको[15] प्रधानहुआ[16] ब्रह्म[16] ऐसा जानताभया २८। ३ ॥

[भावार्थ मन्त्र ३ का]

प्रजा० जिस्से अग्नि वायु जो अन्य देवताओं से श्रेष्ठ हैं सोभी इन्द्र के वाक्यसेही उस यक्षको कि जिसके समीप गये अरु सम्भाषण किया अरु जिसके दियेहुये तृणको जलावने उठावने बिषे असमर्थ भये तिसको ब्रह्म हैं ऐसा जानतेभये। अरु इन्द्रने सर्वसे प्रथम उमानाम्नी ब्रह्मविद्याके वाक्यसे उसयक्षको ब्रह्मही हैं ऐसा श्रवण करके अग्नि वायु से कहा "तस्मा[1]द्वा[2] इंद्रो ऽतितरा मिवान्यान् देवान् " (तस्मात्[1] वा[2] अन्यान्[3] देवान्[4] इंद्र[5] अतितरांइव) [तिस्से १। ही २। अन्य ३। दवताओं से ४। इंद्र ५।

अतिशय विशिष्टके ६। तुल्य हैं ७।] तिसकारणसे अर्थात् साक्षात् ब्रह्म स्वरूप ब्रह्मविद्याके वाक्य करके सर्व से प्रथम ब्रह्मको जाना तिसकारणसेही अन्य सर्व देवताओं से श्रेष्ठ जे अग्नि वायु तिनसे भी इंद्र अतिशय विशिष्टके तुल्य अर्थात् विशेष धन विद्या ज्ञान गुण राज्यादि वैभव करके सम्पन्नहैं। अरु "स ह्येनन्नेदिष्टं पस्पर्श" ॥ "स हि एनत् नेदिष्टं पस्पर्श" [वो ८। ही ९। इस १०। समीपस्थका ११। स्पर्श करताभया १२।] अर्थात् वोही इंद्र जो सर्वसे अधिक राज्यादि महिमावान् हैं सो इस समीपस्थ जो उमानाम्नी ब्रह्मविद्या साक्षात् ब्रह्ममूर्त्ति है तिस्से उपदेशद्वारा उस परम पूजनीयका बोध रूपसे स्पर्श करताभया। अरु "स ह्येनत्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति" ॥ "स हि एनत् ब्रह्म इति प्रथमः विदांचकार" [वो १३। ही १४। इसको १५। ब्रह्महैं १६। ऐसा १७। प्रधानहुआ १८। जानताभया १९।] अर्थात् वोही इन्द्र उमाके उपदेश से इस परम पूजनीय सविशेष को जो कि अति अद्भुतरूपसे विद्युतवत् प्रकटहो तिरोधान भया तिसको साक्षात् ब्रह्महीं हैं ऐसासर्व ब्रह्मवेत्ताओं में प्रधानहुआ जानताभया २८। ३॥ ॐतत्सत् ॥

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा इतीति न्यमीमिषदा इत्यधिदैवतम् २९। ४॥

[पदान्वयः]

तस्य एष आदेशः यत् एतत् विद्युतः व्यद्युतत् आ इति न्यमीमिषत् आ इति अधिदैवतं इति २९। ४॥

[पदार्थ]

तिसका यह आदेश है जो यह विद्युत के विद्योतनकरने के तुल्य है यह आदेश हैं (अरु) चक्षुके निमेष करने के तुल्य हैं यह आदेश हैं अधिदैवत इति ॥

[भावार्थ मन्त्र ४ का]

प्रजापतिरुवाच ॥ हे सौम्य अब उस निरुपम परमात्माका उपमाद्वारा जो उपदेशहै सोभी श्रवणकरो " तस्यै षे आदेशो " (तस्य एष आदेशः) [तिसका १ । यह २ । आदेशहै ३ ।] अर्थात् तिस निर्विशेष निरुपम परमात्मा का उपमाकरके यह आदेश है ॥

प्रश्न हे भगवन् क्या आदेश है ॥

उत्तर हे सौम्य " यँ देतद्विद्युतो व्यद्युते दा इति " (यत् एतत् विद्युतः व्यद्यु तेत् आ इति) [जो ४ । यह ५ । विद्युतके ६ । विद्योतनकरनेके ७ । तुल्य है ८ । यह आदेश है ९ ।] अर्थात् हे सौम्य जैसे लोक बिषे जो यह प्रत्यक्ष मेघाविष्ट विद्युत (बिजली) चमकद्वारा अपने को प्रकट देखायकर तिरोधान होजाति है । तैसेही वो परमपूजनीय सर्वशक्तिमान् परमात्मा देवताओं के समक्ष अपने विशेष रूपको देखायकर तिरोधान होताभया यह दार्ष्टांतिक उपदेश हैं । अरु दूसरा उपमोपदेश यह है जो " इति न्यमीमिषँदा " (न्यमीमिषत् आ इति) [चक्षुकेनिमेष करनेके ११ । तुल्यहै १२ । यह आदेशहैं] अर्थात् जैसे पुरुषादिकोंके चक्षु निमेष लगाय पुनः खुलतेहैं । तैसेही वोपरमात्मा देवताओंके हितार्थ प्रकट हो तिरोधानहोता भया यह द्वितीय दृष्टांतिक आदेशहैं " इत्यधिदैवतम् " (अधिदैवतं इति) [अधिदैवत १३ । समाप्त भया १४ ।] अर्थात् यह अधिदैवतरित्या तुम्हारे प्रति उपमाद्वारा उस ब्रह्मका उपदेश समाप्तभया । हे शिष्य तात्पर्य्य यह है जो देवता अवतारादि सविशेषरूप अरु सर्व प्रत्यगात्मा निर्विशेष रूपएक ब्रह्महीके हैं सविशेषता अरु निर्विशेषता यह दोनों उस विज्ञान घन सर्व शक्तिमान् परमात्माकी महिमाहै अरु भेद कुछ नहीं २९ । ४ ॥

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदु
पस्मरत्यभीक्ष्णंसंकल्पः ३०।५॥

[पदान्वयः]

अथ अध्यात्मं यत् एतत् च मनः गच्छति इव अनेन च एतत् उपस्मरति अभीक्ष्णं संकल्पः ३०।५॥

[पदार्थ]

तिसकेअनंतर अध्यात्म (श्रवणकरो) जो यह पुनः मन गमनकरताके तुल्यहैं इसमनकरके पुनः इसब्रह्मको समीपहोकरस्मरणकरताहै (अरु) अत्यंत संकल्प हैं ३०।५॥

[भावार्थ मन्त्र ५ में का]

प्रजापतिरुवाच हे सौम्य "अथाध्यात्मं"। { अथ अध्यात्मं } [तिसके अनन्तर १। अध्यात्म श्रवणकरो २।] अर्थात् अधिदैव के अनन्तर अब प्रत्यगात्म विषयक अध्यात्म आदेश श्रवण करो। "यदेतद्गच्छतीव च मनो"। { यत् एतत् मनः च गच्छति इव } [जो ३। यह ४। मन ५। ६। गमनकरताके ७। समान हैं ८।] अर्थात् जो यह सर्व इन्द्रियों में श्रेष्ठ अनन्तर इन्द्रिय मनहैं सो निर्विशेष ब्रह्मको विषय करनेवाले के समान हैं। अरु। "अनेन चैतदुपस्मरति"। { अनेन च एतत् उपस्मरति } [इसमनकरके ९। पुनः १०। इसब्रह्मको ११। समीपस्मरण करताहै १२।] अर्थात् जो मुमुक्षु इसमनसे इस प्रत्यगात्मा ब्रह्मको समीपहोकर अर्थात् तदाकार वृत्तिसे स्मरण अभ्यास करता है तिसके "अभीक्ष्णंसंकल्पः"। { अभीक्ष्णं संकल्पः } [अत्यंत १३। संकल्पहैं १४।] अर्थात् अतिशय करके मनरूप उपाधि द्वारा संकल्प स्मृति आदि प्रतीतियोंसे आत्मा अभिव्यंजक अर्थात् विषय कियेभयेके समान होताहै मानो देखही लियाहै। सो यह अध्यात्मोपदेशहैं। हे शिष्य पूर्वोक्त अधिदैवत ब्रह्मोपदेश विद्युत अरु निमेषणके समान शीघ्रही प्र-

काशन धर्म्मी हैं अर्थात् उपदेशके समकालही मुमुक्षुकोचिदानंद घनब्रह्मका प्रकाशकहै। अरुअध्यात्मोपदेश मनकी प्रतीतिकेसम काल अभिव्यक्त धर्म्मी है अर्थात् जब मुमुक्षु ब्रह्माकार वृत्ति निष्ठहोकर चिदानन्द घन आत्माका ध्यान करताहै तब उस वृत्ति द्वारा ब्रह्म ज्ञापकहै। तात्पर्य्य यह जो अधिदैवत अध्यात्मोपदेश मध्यमाधिकारीके अर्थ हैं। अरु उत्तमाधिकारीके अर्थ निर्विशेष ब्रह्म का सूक्ष्मादेश पूर्व प्रथम खण्डमें कहा है ३०। ५॥

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ३१। ६॥

[पदान्वयः]

तत् ह तद्वनं नाम तद्वनं इति उपासितव्यं सः यः एतत् एवं वेद एनं सर्वाणि भूतानि अभि ह संवांछंति ३१। ६॥

[पदार्थ]

वोब्रह्म निश्चयसे सर्वकोभजनीयहै (तिस्से) प्रख्यात (वह ब्रह्म) सर्वकोभजनीय इस गुणद्वारा उपासना करने योग्य हैं जो कोई इस ब्रह्मकी इस प्रकार उपासना करताहै उसको सम्पूर्ण भूत सर्वओरसे निश्चयसे प्रार्थनाकरतेहैं ३१। ६॥

[भावार्थमन्त्र६मेंका]

प्रजापतिरुवाच हे सौम्य "तद्धतद्वनं" { तत् ह तद्वनं } [वो १। निश्चय से २। सर्वको भजनीय हैं ३।] अर्थात् वो ब्रह्म जो अधिदैवत अध्यात्म उभयरीत्या तुम्हारे प्रति उपदेश किया है सो निश्चय पूर्वक देव मनुष्यादि सर्व करके भजनीय है एतदर्थ "नाम तद्वनमित्युपासितव्यं" { नाम तद्वनं इति उपासितव्यं } [प्रख्यात ४। सर्वको भजनीय ५। इस गुण द्वारा ६। उपासना करने योग्यहै ७।] अर्थात् सर्वको सर्व प्रकार से प्रख्यात सर्व का प्रत्यगात्मा ब्रह्म सर्वको भजनीय अ-

र्थात् ज्ञान पूर्वक विचारनीय अरु सेवनीय हैं इसही गुण द्वारा देवादि सर्वकी उपासना करने योग्यहै क्योंकि अधिदैवत रूपसे नानाप्रकारके स्वरूप धारणकर धर्म्मादि सर्वका रक्षक अरु पालक है । अरु अध्यात्म रूपसे सर्वका प्रत्यगात्मा चैतन्य विज्ञान घन सर्वका साक्षी अपना आप है ताते विशेष रूप किंवा निर्विशेष रूपसे यथाधिकार सर्वकोही उपासना करने योग्य है अरु उसकी यथोचित उपासनाका यह फल है "स[8] य[9] एतदेव[11] वेद[12]" (सः यः एतत् एवं वेद) [जो ८ । कोई ९ । इस ब्रह्मकी १० । इस प्रकार ११ । उपासनाकरताहै १२ ।] अर्थात् जो कोई अधिकारी अपने अधिकार योग्य इसप्रख्यात प्रत्यगात्मा ब्रह्मकी श्रुति वाक्यानुसार ज्ञात पूर्वक उपासना करताहै "अभि[16] हैं[17] नं[13] सर्वाणि[14] भूतानि[15] संवांछंति[18]" (एनं सर्वाणि भूतानि अभि हैं संवांछंति) [उसको १३ । सम्पूर्ण १४ । भूत १५ । सर्व ओरसे १६ । निश्चय १७ । प्रार्थना करते हैं १८ । अर्थात् उस उपासकको देव मनुष्यादि सम्पूर्ण भूत सर्वप्रकारसे निश्चय पूर्वक शुश्रूषादि द्वारा प्रार्थना करते हैं जैसे कि ब्रह्मकी । अर्थात् जैसे ब्रह्म सर्बकरके उपासनीय है तैसेही ब्रह्मवेत्ता भी सर्वकरके उपासनीय है क्योंकि "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवाति" ब्रह्मका वेत्ता ब्रह्मही होता है ३१ । ६ ॥

उपनिषदं[2] भो[1] ब्रूही[3] त्युक्ता[4] ते[5] उपनिषं ब्राह्मीं वांवत[11] उपनिषंद[12] मब्रूमे ति[13] ३२ । ७ ॥

[पदान्वयः]

भो[1] उपनिषदं[2] ब्रूहि[3] इति उक्ता ते[5] उदनिषत् वाव ब्राह्मीं उपनिषदं ते[11] अब्रूम[12] इति[13] ३२ । ७ ॥

[पदार्थ]

हेभगवन् उपनिषत् कहिये इसप्रकार जब शिष्यने कहा तब

आचार्य्य कहतेभये तेरेको उपनिषत् कहा प्रसिद्ध ब्रह्मविषयक उपनिषत् तेरेप्रति हम कहतेभये हैं ३२ । ७ ॥

[भावार्थ मन्त्र ७ में का]

जिज्ञासुरुवाच "। उपनिषदं भो ब्रूहि " । { भो उपनिषदं ब्रूहि } [हे भगवन् १ । उपनिषत् २ । कहिये ३ ।] अर्थात् ब्रह्म विद्या श्रवण करता जिज्ञासु तिसके प्रति अधिदैवत अध्यात्म उभय रीत्या ब्रह्म निरूपणकरके आचार्य्य किंचित्तूष्णीं भये तब श्रद्धावान् जिज्ञासुने पुनः आचार्य्य से निवेदन किया कि हे भगवन् उपनिषत् कहिये । "। इति " । { इति } [इसप्रकार ४ ।] जब जिज्ञासूने प्रश्न किया तब आचार्य्य प्रजापति कहतेभये "। उक्ता ते उपनिषत् " । { ते उपनिषत् उक्ता } [तेरेको ५ । उपनिषत् ६ कहा है ७ ।] अर्थात् हे सौम्य यह सर्व हमने तुमको उपनिषत्तूही कहा है ॥

प्रश्न ॥ हे प्रभो कौन उपनिषत् कहा है ॥

उत्तर ॥ "। ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति " । { वाव ब्राह्मीं उपनिषदं ते अब्रूम इति } [प्रसिद्ध ८ । ब्रह्मविषयक ९ । उपनिषत् १० । तेरेप्रति ११ । कहतेभये हैं १२ । १३ ।] अर्थात्जो हमने तेरेप्राति कहाहै सोसर्व एकब्रह्मविषयक उपनिषत्हीकहाहै ॥

शिष्यउवाच ॥ हे गुरो परमात्म विषयक उपनिषत् श्रवण करके जो पुनः जिज्ञासुने प्रश्न किया कि हे भगवन् उपनिषत् कहिये तिसका क्या अभिप्राय है । जो कदापि श्रवणकरी विद्या तिसके अर्थ प्रश्न है तो पिष्टपेषणवत् श्रवण किये के अर्थ प्रश्न व्यर्थ हैं अरु जो कदापि आचार्य्य ने अशेष न कहाहोय एतदर्थ प्रश्नहैं तो भी योग्य नहीं क्योंकि आचार्य्यने पूर्वही फलवादसे उपसंहार अर्थात् उपदेश की समाप्ति कियाहै ताते शेष विषयक भी प्रश्न योग्य नहीं । अथवा क्या कोई और विद्या इस उपनिषत् ब्रह्मविद्या को सहकारी सहायक हैं कि तिसके अर्थ प्रश्न है । जैसे वेदके सहकारी शिक्षा निरुक्त ब्राह्मणादि वेदां-

गहैं अरु जैसे यज्ञादि कर्म्ममें कारकादि सहायकहैं तैसे हे गुरो जिज्ञासुके इसप्रश्नका अभिप्राय क्या है ॥

उत्तर ॥ हे शिष्य तुमयथार्थ कहते हौ जिज्ञासुकाप्रश्न पिष्ट पेषणवत् श्रुतविद्याके अर्थ नहीं। अरु आचार्य्यने पूर्वही।"प्रेत्या-स्माल्लोकादमृताभवंति (अरु) सर्वाणि भूतानि संवांछंति" इस प्रकार फलवाद कहके विद्या की समाप्ति किया है। अरु प्रश्न के उत्तर में भी आचार्य्यनें"। उक्तात उपनिषत्"। ऐसाकहा है एतदर्थ शेषार्थ भी प्रश्न नहीं। अरु सहकारी विद्या अरु स-हायक इनके अर्थ भी प्रश्न नहीं क्योंकि ब्रह्म विद्या निर्पेक्ष है वो पूर्वकाण्ड वेदवत् सापेक्षनहीं वेद के अध्ययनमें शिक्षाकल्पा-दि सहकारीविना वेदार्थ बोध यथोचित होता नहीं। अथवा वेद करके प्रतिपाद्य नाना प्रकार के यज्ञ तिनके विधान में सूक्त, वा कोन वाक, सूत्र, ब्राह्मणादि, वेदांग विद्या सहकारी हैं। अरु ब्रह्म बिद्या एक अद्वैत प्रत्यगात्म ब्रह्मकी प्रकाशिक हैं ताते द्वैता-पत्तीके अभावसे उसके सहकारी काभी अभावहै तथाच+"। विद्या विमोक्षाय विभाति केवला" ताते सहकारी विद्याके अर्थ भी जि-ज्ञासुका प्रश्ननहीं। अरु निःक्रिय आत्माके जिज्ञासुको कर्तृत्व का अभाव है। तथाच*। "। नास्त्यकृत कृतेन × नकर्म्मणा"। ताते जैसे यज्ञादिकर्म में ऋत्विज ब्राह्मण देशकाल बस्तु आदि सा-मग्री सहायकहैं तैसेअकर्म्मणिब्रह्मबिद्याकासहायक भी कोईनहीं वो अपने अपरोक्षहोनेके पूर्वही परोक्ष अर्थात् श्रवणकालमेंही ❀"।निहंति विद्याऽखिलकारकादिकान्" सर्व कारकादिकोंकोनाश करैहै।ताते एतदर्थ भी जिज्ञासुका प्रश्न नहीं। हेशिष्य प्रश्नका अभिप्राययहहै कि आचार्य्य से श्रवण किया जोनिर्बिशेषब्रह्म ति-सही को पुनः अधिदैवत अध्यात्मरीत्या सविशेषभी श्रवणकिया तब जिज्ञासु को ब्रह्मबिद्याबिषे अधिकाधिक श्रद्धा होति भई अरु ब्रह्म विद्याके सर्वोत्तम महत्त्वकोबिचार तिसकी प्राप्ति दुःसाध्य

+ रामगीता। * मुंडक × कैवल्य ❀ रामगीता ॥

ज्ञान तिसके प्राप्त्युपाय साधनके अर्थ प्रश्न किया है अन्य हेत्वर्थ नहीं । सोसाधन आचार्य्य अग्रेप्रतिपादनकरे हैं ३२ । ७ ॥

तस्यैतपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्यमायतनम् ३३ । ८ ॥

[पदान्वयः]

तस्यै तपः दमः कर्म्म इति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्यं आयतनम् ३३ । ८ ॥

[पदार्थ]

तिसकी (प्राप्त्यर्थ) तप दम कर्म्म आदि (उपायहै) बेदचार अंगोंसंहित चरणवत्है (अरु) सत्यं आयतन है ३३।८ ॥

[भावार्थ मन्त्र ८ में का]

प्रजापतिरुवाच हे सौम्य जो ब्रह्मबिद्याका जिज्ञासु है उसको "तस्यै तपो दमः कर्म्म" { तस्यै तपः दमः कर्म्म } [तिसकी १ ।] (प्राप्त्यर्थ) तप २। दम ३ । कर्म्म ४ ।] अर्थात् ब्रह्म विद्या प्राप्त्यर्थ "कर्म्म" अग्निहोत्रादि विहित कर्म्म जे अकर्णे प्रत्यवाय आदि आगंतुक पापनाशकहैं । अरु " तप " कृच्छ्र चांद्रायणादि ब्रतजे संचित अरु वर्त्तमान पापनाशकहैं अरु " दम " कर्म्मेंद्रिय ज्ञानेंद्रिय अरु मन इनको स्व २ विषयोंसे निग्रह करना " इति " { इति } [इत्यादि ५] अर्थात् तप दम कर्म्म अरु आदि शब्द करके अमानित्व अदंभित्व अहिंसत्वादि दैवी सम्पदा । इन सर्व उपायसे जिस पुरुषका अंतःकरण सर्व दोष से रहित शुद्ध अरु स्थिर भयाहै तिस संस्कारी पुरुषको आचार्य्य से श्रवण मननकरी उपनिषत् ब्रह्मविद्या साफल्य होतिहै । अरु उक्त साधनों करके रहित असंस्कारी पुरुषको श्रवणकरी भी ब्रह्मविद्या अयथार्थ अरु विपरीति फलकारी होती हैं । इंद्र विरोचनवत् । ताते उपनिषत् विद्याकी प्राप्त्यर्थ तप दम कर्म्मादि साधन उपाय हैं इन उपायोंसे आचार्य्य द्वारा ज्ञानोत्पत्ति होय

है अन्यथा नहीं तहां जो कदापि किसी पुरुष बिषे विनाहिंसाधनों के यथार्थ ज्ञानोत्पत्ति भासे तो उस बिषे पूर्वव्यतीत किंवा अनेक जन्मोंके किये साधन जानिये। अर्थात् साधन इस जन्म काहो वा जन्मान्तर का हो तिस करके शुद्ध अंतःकरण मेंही ज्ञानोत्पन्न होताहै अन्यथा नहीं होता + "। यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यै ते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशयंते महात्मना "। ज्ञानमुत्पद्यतेपुंसां क्षयात्पापस्यकर्म्मण।" इतिस्मृते। ताते तप दम कर्म्मादि दैवी सम्पदा ब्रह्मविद्या प्राप्त्यर्थ प्रथम उपायहैं। अरु "। प्रतिष्ठा[७]वेदा[६]ः सर्वांगानि "। { सर्वांगानि (सह) वेदाः प्रतिष्ठा } [सर्व अंगके ६। (सहित) वेदाचार ७। चरणवत् है ८।] अर्थात् शिक्षाआदि छः अंगोंसहित वेदचार इस उपनिषत् बिद्याके चरणवत् हैं। अथवा सांगवेद इसके चरणादि अंगवत्हैं। अर्थात् यह जो उपनिषत् बिद्या हैं सो शिरोविद्या हैं अरु वेदादि अंगकर पादादिवत् अधोअंगहै। अरु "। सत्यमायतनम्।" { सत्यं आयतनं }[सत्य९। आयतन हैं १०।] अर्थात् उस ब्रह्मबिद्या के निवासका सत्यस्थान हैं। अर्थात् जहाँ सत्य हैं असायिता हैं अकुटिलतादि हैं तिनको काया बाचा मनसा करके आश्रय करते हैं तिनहीं पुरुषोंमें ब्रह्मबिद्या निवास करती हैं। अरु जे असुर प्रकृति मायावी असत्यवादी हैं तिनपुरुषोंबिषे कदापि नहीं निवासकरती ×"। नयेषुजिह्ममनृतं न मायाचेति "। एतदर्थसत्य को आयतन कहाहै यह सर्वसाधनोंसे उत्तम साधनहै तथाच *"।सत्यमेवजयति❁सत्यान्नप्रमदितव्यं।" इतिश्रुते"।अश्वमेध सहस्रंचसत्यंचतुलया धृतम्। अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकंविशिष्यते।" इतिस्मृते॥ तात्पर्य्ययह जो परमात्मविषयक उपनिषत् शिरोविद्याहैं सो वेदादि अपने अंगोंसहित तपदम कर्म्म सत्यादिकों की जिसपुरुष में स्वभाव भूत असाधारण स्थिति हैं

+वेदमन्त्रविषे। × प्रश्नोपनिषत्में। * मुण्डकमें। ❁ तैत्यरेयउपनिषत्में॥

तहांहीं निवासकरती हैं, अन्यथा नहीं । ताते ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु मोक्षेच्छुको सत्यादिसाधन अवश्यनिरंतर आदरणीयहैं ३३।८॥

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठतिप्रतितिष्ठति ३४ । ६ ॥

इतिश्री तलवकारोपनिषद् समाप्तम् ॥

[पदान्वयः]

यः वै एतां एवं वेद पाप्मानं अपहत्य अनन्ते ज्येये स्वर्गे लोके प्रतितिष्ठति २ ॥ ३४ । ९ ॥ इति उ० ॥

[पदार्थ]

जो निश्चयसे इस ब्रह्मविद्याको इसप्रकार जानताहै (सो) पापोंको नाशकरके अनन्त सर्वोत्तम सुखरूप ब्रह्ममें प्राप्त होता है ३४ । ९ ॥ इतिश्रीकेनोपनिषद् ॥

[भावार्थ मन्त्र ९ में का]

प्रजापतिरुवाच हे सौम्य "यो वा एतामेवं वेद" { यः वै एताम् एवं वेद } [जो १ । निश्चय से २ । इस ब्रह्मविद्या को ३ । इसप्रकार ४ । जानताहै ५ ।] अर्थात् जे पूर्वोक्त साधन सम्पन्न जिज्ञासु श्रद्धा सम्पन्न निश्चय आत्मकहोके इसप्रत्यगात्मविषयक ब्रह्मविद्या जो इस केनोपनिषत् करके उपदेश किया तिसको गुरुके उपदेश से यथार्थ जानताहै सो जिज्ञासु पुरुष । "अपहत्य पाप्मानं" { पाप्मानं अपहत्य } [पापोंको ६ । नाश करके ७ ।] अर्थात् संसार वृक्षका वीज जो काम कर्म्म लक्षणवान् सर्व पापोंका आश्रय महापापरूप जन्मादि सर्व अनर्थका हेतु अविद्या तिसको अशेष नाशकरके "अनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये । { अनन्ते ज्येये स्वर्गे लोके } [अनन्त ८ । सर्वोत्तम ९ । स्वर्ग १० । लोकमें ११ ।] अर्थात् अनन्त कहिये देव मनुष्यादि करके अरु मन बुद्ध्यादिकरके अरु वेदादि शास्त्र करके जिसका अन्त नहीं सो अनन्त । अथवा ब्रह्मलोकादि पाताल पर्यन्त

लोक लोकान्तर रूपी देश अरु काष्ठादि लेके परार्द्ध पर्यन्त भूत वर्त्तमान भविष्यत् रूपी काल। अरु अव्याकृतादि तृणपर्यन्त वस्तु। इत्यादि देशकाल वस्तु करके जिसका अन्त नहीं सो अनन्त अर्थात् देशकाल वस्तुसे अव्यवहित अनंत सर्व उत्तमताकी सीमा सुखस्वरूप आनंदघन + "एष एव परम आनंदः" × "एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रा मुपजिवंति"। ब्रह्म में कि जिस आनन्दके लवलेश से स्वर्गादि लोक लोकान्तर सर्व आनन्दित होते हैं तिस आनन्दघन परिपूर्ण परमात्मा में "प्रतितिष्ठेति २" "प्रतितिष्ठेति ३ [प्राप्त होता है १२] अर्थात् ब्रह्मही होता है। तथाच "* यथानद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्" सयोह वैतत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवाति" पुनः उसको जन्मादि संसार नहीं"॥

प्रश्न शिष्यउवाच हे गुरो "अनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति" इस श्रुतिका अर्थ आपने परमात्माविषयक चरितार्थ किया सो अस्तु परन्तु, अनंत है सर्वोत्तम विषय भोग जहां तिस स्वर्गलोकमें प्राप्तहोता है 'यह अर्थभी युक्तही है सो क्यों न होय॥

उत्तर हे शिष्य त्रिविष्टप अर्थात् त्रैलोक्यान्तर्गत जे यज्ञादि कर्म्मोंकाफल स्वर्गलोक तिसविषे अनंतता का विशेषण बने नहीं तथाच "कर्म्मचितो लोक क्षीयत" पुण्य चितोलोक क्षीयत" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे स्वर्गादिलोक अपने अधिपत्यादि सहित अंतवान्हैं ताते सो ब्रह्मविद्याका फल नहीं। एतदर्थ अनंत सर्वोत्तम सुखरूप अविनाशी परमात्माकी आत्मभावसे अर्थात् सोहमस्मि भावसेप्राप्ति ब्रह्मविद्याकाफलहै॥ ३४॥९॥ ओंतत्सत्॥

+ × बृहदारण्य षष्ठाऽध्याये। * मुंडकउपनिषत् विषे॥

इतिश्रीसामवेदीयतलबकारशाखीकेनोपानिषत्संपूर्णम्॥

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखानेमें छपी
सितंबर सन् १८९१ ई०॥

[illegible] गंगा

जी साला [illegible]

मोक्ष शा[illegible] भाष्य कृ [illegible]

ईशावास्यमित्यादि। ईश इष्टे इतीट्
तेनेशा। ईशिता परमेश्वरः परमा
त्मा सर्वस्य। स हि सर्वमीष्टे सर्वजन्तू
नामात्मा सन्प्रत्यगात्मतया तेन
स्वेन रूपेणात्मनेशा वास्यमाच्छा
दनीयं। किम्॥ इदं सर्वं यत्किञ्च य
त्किञ्चिज्जगत्यां पृथिव्यां जगत् तत्
सर्वं ॥ स्वेनात्मना ईशेन प्रत्यगा
त्मतयाहमेवेदं सर्वमिति परमार्थ
सत्यरूपेणानृतमिदं सर्वं चराचरमा
च्छादनीयं स्वेन परमात्मना॥
यथा चन्दनागर्वादेरुदकादि संबंध
जक्लेदादिजमौपाधिकं दौर्गन्ध्यं त
त्स्वरूपनिघर्षणेनाच्छाद्यते स्वेन
पारमार्थिकेन गन्धेन॥ तद्वदेव
हि स्वात्मन्यध्यस्तं स्वाभाव
कं कर्तृत्वभोक्तृत्वादि लक्षणं।
प्रत्यस्तावदिदं सर्वं प्रत्यस्ताभोक्ता
[illegible]

जगत्स्तु पा जगत्यां पृथिव्यां ज
गत्या मिथ्येप... यत्... सर्वमेवना
मरूपकर्मात्मकं विकारजातं परमार्थ
सत्यात्म भावनया त्यक्तं स्यात् ॥
स्वमीश्वरात्मभावनया युक्तस्य
॥ पुत्राद्येषणा त्रय संन्यासे स्वा
धिकारो न कर्मसु ॥ तेन त्यक्तेन त्या
गेनेत्यर्थः ॥ नहि त्यक्तो मृतः पुत्रो वा
भृत्यो वात्मसंबन्धिताया अभावात्
आत्मानं पालयत्यतस्त्यागेनेत्य
यमेव वेदार्थः ॥ भुञ्जीथाः पालयेथा
॥ एवं त्यक्तैषणस्त्वं मा गृधः
गृधिमाकाङ्क्षां मा कार्षीर्धनविषयां ॥
...म् ॥ कस्य स्विद्धनं कस्यचित् पर
स्य स्वस्य वा धनं मा काङ्क्षीरित्यर्थः
स्विदित्यनर्थको निपातः ॥ अथवा मा गृ
धः कस्मात् ॥ कस्य स्विद्धनं इत्या
क्षेपार्थो न कस्यचिद्धनमस्ति यद्
गृध्येत ॥ आत्मैवेदं सर्वमिति ईश्व
र भावनया सर्वं त्यक्तमतः आत्म
न एवेदं सर्वमात्मैव च सर्वमतो

मिथ्याविषयों मुधिम...कर्ता
रियथा १= प्रा...मा को कूमि
विनयोग उपनिषत्...नहीं
मा के स्वरूप का ~~कथन~~ याथास्म्य
प्रकार ~~के~~ का ॥ शुद्धत्व
पविद्धत्व नित्यत्व शरीर
त्व सर्वगतत्वादि बन्धमार

श्रुति = तथाऽहं सोऽसौ योऽसौ
सोऽहं" सोऽहं=ॐम्" सः, परं

